
चन्दामामा
दीपावली अंक
50
NAYE
PAISE



एक समय था जब भूपाल देश का राजा विजयादित्य था। गद्दी पर चढ़ते ही उसने प्रजा के कल्याण पर ध्यान से सोचा विचारा। उसने देखा कि देश में, सामन्त, धनवान, बलवान, प्रजा को सता रहे थे। इन बड़े आदमियों के कारण खेती करनेवाले, गौ भैंसों को रखनेवाले बहुत तङ्ग आये हुए थे। विजयादित्य ने इस अन्याय को रोकने के लिए कुछ नये विधान बनाये। उनके कारण साधारण जनता को बहुत से संरक्षण मिले। बलवानों का अन्याय कम हुआ। राजा का यह काम राज्य के कुछ बड़े कर्मचारियों को नहीं जँचा। उनमें एक मन्त्री और सेनापति भी थे। वे खुल्लम खुल्ला राजा का विरोध नहीं कर सके। छुपे छुपे उसके विरुद्ध षड्यन्त्र करने लगे।

षड़यन्त्रकारियों की संख्या बीस के करीब थी। सब बड़े बड़े ओहदों पर थे। उनकी मदद के बगैर राजा एक क्षण भी राज्य नहीं कर सकता था। राजा को गद्दी पर रखना व उतारना उनके हाथों में था।

मन्त्री और सेनापति षड़यन्त्रकारियों के सरदार थे। मन्त्री ने एक एक षड्यन्त्रकारी को घर बुलवाकर कहा-"राजा ने हमारे वर्ग का ही अहित नहीं किया है, परन्तु देश का भी किया है। साधारण जनता को चाहिये न्याय नहीं पर हम जैसे लोगों का आश्रय। मेहनत से कमाने मात्र से प्रजा कभी सुखी नहीं होगी, सन्तुष्ट न होगी। भले ही राजा कितना ही न्याय करे पर उनका दारिद्य नहीं जायेगा। उनको हमारा आश्रय ही सन्तोष देता है।



अगर हम कृपा करके उन्हें कुछ देते हैं तो वे सन्तुष्ट हो जाते हैं। क्योंकि हम जो कुछ देते हैं वे बिना मेहनत के पाते हैं। हम क्योंकि बिना मेहनत के भरपूर धन पाते हैं, वे भी हमारे कदमों पर चलते हैं। अब राजा ने क्या किया है? उसने कुछ ऐसे विधान बना दिये हैं, जिनसे हमारा नुक्सान होगा और प्रजा का भी। इसे हमें नहीं सहना चाहिये।

मन्त्री की इस बात से षड़यन्त्रकारी सहमत थे। तब सबको एक जगह मिलकर अपना कार्यक्रम बनाना था।

"यह सम्मेलन बहुत ही रहस्यपूर्वक चलाना है। हमें अपने निश्चय को, इससे पहले कि राजा को उसके बारे में मालूम हो, कार्यान्वित कर देना होगा। जङ्गल में मेरी एक झोंपड़ी है। शिकार पर जब होता हूँ, तब मैं वहाँ रहता हूँ। हमें वहाँ इकट्ठे होकर यह निश्चय करना होगा कि हमें क्या करना है।" एक सामन्त ने कहा।

यह निश्चय हुआ कि एक दिन शाम षड्यन्त्रकारी एक एक करके, वहाँ पहुँचे। उनकी सभा के समय तूफ़ान भी चलने लगा। इसलिए यह मय जाता रहा कि उस रास्ते कोई आयेगा, या उनकी सभा में कोई बाधा पहुँचेगी।

सब झोंपड़े के अन्दर चले गये और किवाड़ बन्द कर दिये गये। सभा शुरू हुई।

"विचारणीय विषय ही क्या है? राजा को मारकर हमें एक ऐसे राजा को गद्दी पर बिठाना चाहिये, जो हमारे अधिकारों की रक्षा कर सके।" सेनापति ने कहा।

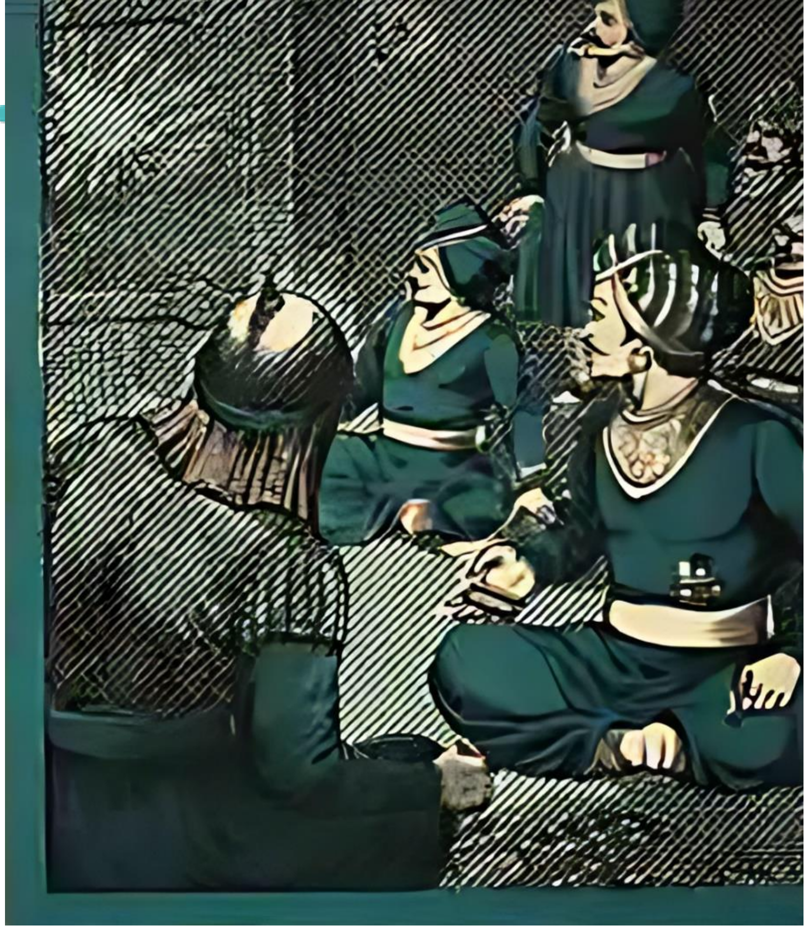
मन्त्री ने राजा की हत्या के बारे में आपत्ति उठाई। "मैं इतना तो

जानता हूँ कि हमें राजा को पदभ्रष्ट कर देना चाहिये। मैं यह नहीं चाहता कि वे मारे जायें। जहाँ तक उनके व्यक्तित्व का सम्बन्ध है, हमारा उनसे कोई विरोध नहीं है।" मन्त्री ने कहा।

पदभ्रष्ट होने पर भी राजा राजा ही है। राजा असमर्थ ही हो, पर प्रजा में राजभक्ति रहती ही है। राजा का जीवित रहना हमारे लिये हमेशा खतरनाक है। यही नहीं राजा उनकी मदद भी कर सकते हैं। शत्रु को कभी जीवित नहीं रहने देना चाहिये।" सेनापति ने कहा।

कई ने सेनापति का समर्थन किया तो कई ने मन्त्री का। आखिर एक सामन्त ने कहा-"इस प्रकार के वाद विवाद हमारी एकता में दरारें पैदा कर सकते हैं। मेरा यह सुझाव है कि मन्त्री और सेनापति शतरञ्ज में बाजी लगायें। अगर मन्त्री की जीत हुई तो राजा नहीं मरेगा। सेनापति की हुई तो राजा मरकर रहेगा।"

यह सुझाव सब को पसन्द आया। मन्त्री को शतरञ्ज का बड़ा शौक था। उसके पास हमेशा शतरञ्ज की पट्टी रहती थी। वह उसे रखकर बाजी शुरु करनेवाला ही था कि



दरवाजे पर खटखटाकर किसी ने कहा-"दरवाजा, दरवाजा।"

पड़यन्त्रकारी स्तब्ध रह गये। जरूर उनका रहस्य खुल गया होगा, नहीं तो उस तूफान में उस जङ्गल में उस समय कौन आयेगा? और क्यों आयेगा? "वर्षा में भीग रहा हूँ। मुझे जरा अन्दर आने दो।" बाहर खड़े आदमी ने फिर कहा।

दरवाजा खोलो। हम बीस आदमी हैं, एक आदमी हमारा क्या बिगाड़ सकेगा?" सेनापति ने कहा। उसके यह कहने पर किसी ने दरवाजा



खोला। तुरन्त विजयादित्य गीले कपड़े पहने अन्दर घुसा और उसने दरवाज़े की चटखनी लगा दी।

"बड़े बुजुर्ग सब एक जगह इकट्ठे हुए हैं। जुआ खेला जा रहा है। कहीं बड़ी बाज़ी तो नहीं लग रही है?" राजा ने ताना देते हुए कहा। सबके दिल थम से गये। सेनापति ने साहस करके कहा-"बड़ी बाज़ी है, महाराजा, आपके प्राणों की बाज़ी लगाकर मैं और मन्त्री खेलने जा रहे हैं।" राजा के मुँह पर न कोप दिखाई दिया, न भय ही।

"वह बाजी अब न लग सकेगी। तुम सबके प्राण मेरे हाथों में हैं। इस झोंपड़ी के चारों ओर सशस्त्र सैनिक खड़े हैं। तुम राजद्रोहियों में एक ऐसा भी है, जो स्वामीद्रोही भी है। तुम्हारा भेद पहले ही खुल गया था। तुम्हारे शतरञ्ज खेलने पर मुझे कोई आपत्ति नहीं है। परन्तु जैसे मैं कहूँ, वैसे खेलो। दो-दो करके बाजी लगाओ और शर्त यह रहेगी कि जो हारेंगे, उन्हें जीतनेवाले मार देंगे। इस तरह खेलने से, तुम बीस आदमियों में से बीस के प्राण बच जायेंगे। नहीं तो सब के सब अपने प्राण खो बैठेंगे। आगे तुम्हारी मर्जी।" राजा ने कहा।

"जैसे आप कहेंगे, वही हम करेंगे।" सबने कहा। जब यह पता लग गया कि षड्यन्त्र के बारे में मालूम हो गया है तो हर कोई बाहर निकलने की कोशिश कर रहा था।

पहले पहल मन्त्री और सेनापति ने बाजी लगाई। सेनापति हार गया।

"मैं मरने के लिए तैयार नहीं हूँ। मारकर ही मैं मरूँगा।" कहते हुए सेनापति ने तलवार निकाली। परन्तु औरों

ने उसकी तलवार ले ली। उसको, हाथ बाँधकर, एक तरफ खड़ा कर दिया।

थोड़ी देर में सबने बाजी खेली। हारनेवाले दस आदमियों को, हाथ बाँधकर दीवार के सहारे खड़ा कर दिया गया। सेनापति मृत्यु के भय से काँप रहा था।

मन्त्री ने राजा से कहा-"महाराजा, मेरी इच्छा पूरी कीजिए। आप मुझे सेनापति के बदले मरने दीजिए। इसे मौत से बहुत डर है।"

राजा ने मन्त्री की ओर काफी देर तक देखकर कहा-"तुमने यद्यपि मेरे विरुद्ध विद्रोह करने की सोची थी, तो भी तुम्हारे हृदय में अब भी उदारता है। यह बताओ तुमने यह विद्रोह क्यों करने की सोची थी?"

"देश के कल्याण के लिए। आपने हमारे वर्ग के साथ अन्याय करके देश के साथ अन्याय किया है। हमारा कल्याण ही देश का कल्याण है।" मन्त्री ने कहा।

"तुम मूर्ख हो। राजा का कल्याण ही देश का कल्याण है। राजा के प्रति द्रोह करके तुमने देश के प्रति भी



द्रोह किया है। मैंने जैसे कहा था, तुम में कोई स्वामी द्रोही भी है। तुम्हारे षड़यन्त्र के बारे में लोगों को मालूम हो गया। कई दुष्टों ने मेरा पतन निकट देख जनता को मेरे विरुद्ध उकसाया। उन दुष्टों ने तुम्हारा और हमारा स्थान ले लिया है। जनता को इतना भड़काया गया कि उन्होंने शहर में आग लगा दी। नगर की गलियों में लोग एक दूसरे को मार काट रहे हैं। में उस भयङ्कर दृश्य को न देख सका। जान बचाकर इस तरफ माग आया हूँ। मेरे साथ सशस्त्र सैनिक नहीं हैं। मैं यह भी न जानता था कि तुम कहाँ षड्यन्त्र कर

रहे हो। मेरा यहाँ आना बिल्कुल आकस्मिक है। अगर आप मुझे मार दें, या छोड़ दें, तो भी आप नगर जाकर प्रजा को अपनी तरफ नहीं कर सकते हैं। मैं अपने रास्ते जा रहा हूँ।" राजा ने कहा।

"महाराज, ठहरिये। हम वापस नगर चलें। वहाँ शान्ति स्थापित करें।" मन्त्री ने कहा।

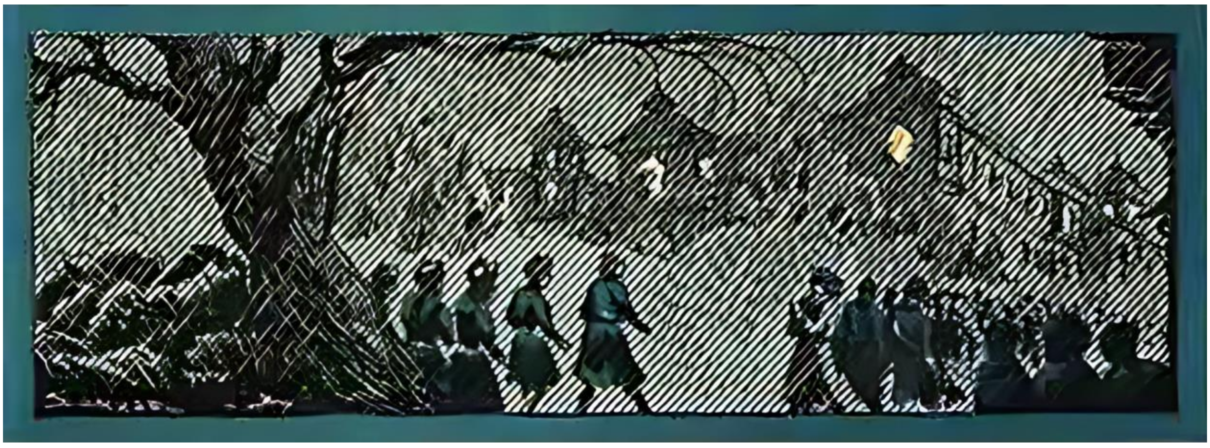
"मैं नहीं आऊँगा। बहुत दिनों बाद मेरा बोझ उतरा है। तुम ही जाकर शान्ति स्थापित करो। अगर वह न कर सको तो प्रजा की कोपाग्नि में जल मिटो।" राजा ने कहा।

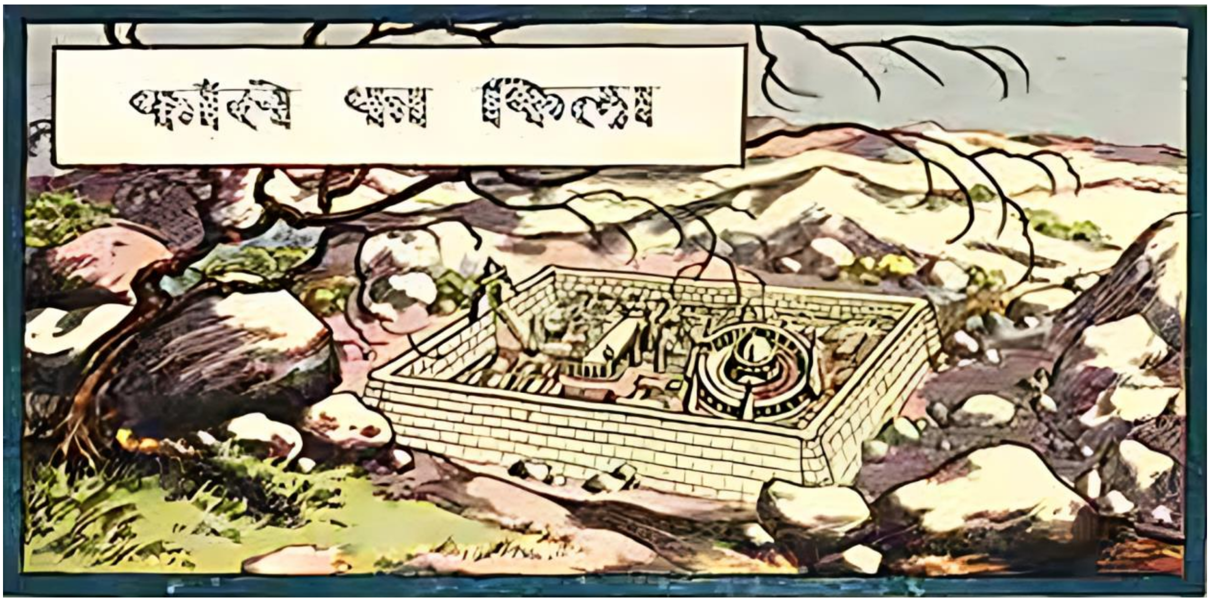
षड़यन्त्रकारी राजा के पैरों पर पड़े। उससे अनुनय-विनय की कि वह न जाये। "महाराज, आप और हम मिलकर जायेंगे तभी लोग शान्त होंगे। देश के लिए ही कम से कम आप हमारे साथ आइये।" मन्त्री ने राजा से प्रार्थना की।

आखिर राजा मान गया। वह मन्त्री सेनापति व अन्य कर्मचारियों को लेकर उस तूफ़ान में ही नगर के लिए वापस निकला। रास्ते में उनको किसी ने न रोका।

राजा के षड़यन्त्रकारियों के साथ नगर में प्रवेश करते ही लोगों का उन्माद यकायक कम हुआ। यह झूठ साबित हुआ कि राजा के विरुद्ध कोई षड़यन्त्र था। उन लोगों से जनता ने बदला चुकाया, जिन्होंने उन्हें उकसाया था। भूपाल नगर में फिर शान्ति स्थापित हुई।

फिर राजा के विरुद्ध षड़यन्त्रकारियों ने कभी षड़यन्त्र न किया। राजा ने उनको दण्ड भी न दिया। उसके विधानों के कारण गरीबों में बड़े लोगों का भय जाता रहा और वे सुख से रहने लगे।





[४]

[सुबाहू भिखारी का अभिनय करके सर्पकेतु के सैनिकों के हाथ से निकल गया। उसके बाद वह वीरपूर को लूटने के लिए जानेवाले लोगों के साथ वीरपूर पहुँचा। सर्पकेतु के सैनिक धोखा देकर वीरपुर के द्वार खुलवाकर अन्दर घुस गये। आनेवाली आपत्ति के बारे में अपने मालिक चन्द्रवर्मा को बताने के लिए मुबाहू राजमहल की ओर भागा। यह देख सर्पकेतु के कुछ सैनिक उसका पीछा करने लगे। बाद में--]

सुबाहू यद्यपि तात्कालिक रूप से बिपत्ति से बच गया था, तो भी पैरों की ध्वनि से वह जानता था कि कुछ सैनिक उसका पीछा कर रहे थे। उसे पीछे मुड़कर देखने का भी मौका न मिला। वह तो इसी फिक्र में था कि जल्दी से जल्दी महल के अन्दर पहुँचे। उसका सारा ध्यान इसी बात पर केन्द्रित था। वह भागा जा रहा था।

पीछे से उन लोगों की ध्वनि और भी नजदीक आ रही थी। इतने में सुबाहू महल के सामने के फव्वारे की आड़ में से आगे भागा। उसने महल के द्वार के पास खड़े हुए सिपाहियों को सम्बोधित करके कहा-"मैं सुबाहू हूँ। रास्ता दो। मेरा पीछा करनेवाले सर्पकेतु के सैनिक हैं। उनको रोको। अपने सब सिपाहियों को सावधान कर



दो।" सिपाहियों के रास्ता देने पर वह झट महल में घुस गया। वे सिपाही इस बीच तलवार लेकर सर्पकेतु के सैनिकों का सामना करने लगे। द्वार पर युद्ध होने लगा।

सुबाहू, चन्द्रवर्मा के महल की सीढ़ियों पर चढ़ता जोर से चिल्लाता गया-"युवराज! बड़ी बिपत्ति आ पड़ी है। सर्पकेतु के सैनिक शहर में आ घुसे हैं। सावधान।"

सुबाहू का चिल्लाना सुन चन्द्रवर्मा चौका। हड़बड़ाता शयनकक्ष से बाहर निकला। उसे महल के राजमार्ग पर बहुत बड़ा शोर शराबा सुनाई दिया। वह आश्चर्य करता महल की छत पर चढ़ गया। मुण्डेर के सहारे खड़े होकर उस ओर देखने लगा, जिस तरफ से शोर आ रहा था इतने में सुबाहू हाँफता हाँफता वहाँ आया।

"युवराजा, सर्पकेतु के सैनिक, धोखा देकर, नगर द्वार खोलकर अन्दर आ गये हैं। हमारे सैनिकों को सावधान कीजिये । शत्रु अब तक राजमहल के आङ्गन में भी आगये होंगे।" उसने कहा।

चन्द्रवर्मा एक क्षण के लिए हतबुद्धि-सा हो गया। देखते देखते, राजमार्ग के दोनों तरफ के मकानों में से आग की लपटें निकलने लगीं। घोड़े हिनहिनाने लगे। सैनिक चिल्ला रहे थे। लोग-बाग आर्तनाद कर रहे थे। सारा आकाश गूँज-सा रहा था।

चन्द्रवर्मा ने सुबाहू की ओर मुड़कर पूछा-"मेरे पिताजी कहाँ हैं ! तुम उनके साथ यशोवर्धन महाराजा के पास गये थे न?"

सुबाहू यह सुनने ही पसीना पसीना हो गया। उसके मुख से बात न निकली। उसे लगा कि उस विकट परिस्थिति में सूर्यवर्मा की अकाल मृत्यु के बारे में बतान अक्लमन्दी न थी। पहले सूर्यकेतु के सैनिकों का खातमा करना होगा। उसके बाद सब बातें फुरसत से बताई जा सकती थीं।

"युवराजा! आपके पिता वीरपुर के रास्ते में हैं। अब जो करना है, पहले उसके बारे में सोचिये। सर्पकेतु के सैनिको ने शहर में आग लगा ही दी है। वे कभी भी राजमहल में प्रवेश कर सकते हैं।" अपने दुख को रोकते हुये सुबाहू ने कहा। इतने में छत पर आनेवाली सीढ़ियों पर हो-हल्ला होने लगा। सुबाहू को सन्देह हुआ कि शत्रु सैनिक ही आ रहे थे। वह चौक उठा।

वह तुरन्त चन्द्रवर्मा के शयन कक्ष में जा घुसा। वहाँ, दीवारों पर लटकी तलवारों में से दो लीं। बाहर आया। उनमें से एक चन्द्रवर्मा को दे दी।



सीढ़ियों पर से "युवराजा, युवराजा" का चिल्लाना सुनाई दिया। आवाज पहचान कर चन्द्रवर्मा ने पूछा "कौन है? सेनापति?"

वीरपुर का सेनापति धीरमल्ल यह सुनते ही सीधे चन्द्रवर्मा के पास भागकर जल्दी जल्दी आया।

"युवराजा! आफत आ पड़ी है। मुझे नहीं मालूम यशोवर्धन महाराजा ने हम पर क्यों तलवार उठाई है। उनके भेजे हुये सैनिक लोगों पर हमला कर रहे हैं। घरों में आग लगा रहे हैं। लूट रहे हैं। नगर के कुछ हमारे लोग भी उनसे जा मिले हैं।" धीरमल्ल ने कहा।



यशोवर्धन महाराजा के भेजे हुये सैनिकों के बारे में सुनते ही चन्द्रवर्मा काँपने लगा। "सेनापति......" वह कुछ कहने जा रहा था कि सुबाहू ने बीच में कहा- "युवराजा! ये सैनिक यशोवर्धन महाराजा के भेजे हुये नहीं हैं। हमारे शहर में घुसने के लिए और हमें धोखा देने के लिए सर्पकेतु ने यह चाल चली है। मैं भी वेष बदलकर उनके साथ नगर में आया हूँ। मामूली कपड़े पहने जो सैनिकों की सहायता कर रहे हैं, वे हमारे नगर के लोग नहीं हैं। वे सीमावर्ती ग्रामों के निवासी हैं।"

यह जवाब सुनते ही सेनापति धीरमल्ल चकित रह गया। उसने चन्द्रवर्मा की ओर मुड़कर कहा- "लगता हैसु सुबाहू ठीक ही कह रहा है। सर्पकेतु इस तरह की चालों में बहुत चलता पुरजा है। महिष्मती नगर गये हुये महाराजा पर भी उसके कारण बिपत्ति आ सकती है।" धीरमल्ल ने कहा।

"सेनापति! पहले इस आफत के बारे में सोचिये, जिसमें हम फँस गये हैं। अपने सैनिकों को एकत्रित करके पहले इन शत्रुओं को नगर से खदेड़ने का प्रयत्न कीजिये।" सुबाहू यह कहता कहता चन्द्रवर्मा की ओर लगातार देखता जा रहा था।

सुबाहू की बात पर चन्द्रवर्मा ने सिर हिला कर सेनापति से पूछा- "सेनापति, राजमहल की रक्षा के लिए क्या किया जाय? क्या व्यवस्था की है? सेना सन्नद्ध है कि नहीं?"

"यशोवर्धन महाराज की जय लगाते कुछ हथियारबन्द सैनिक, पहरेदारों से बचकर महल के आङ्गन में आये। परन्तु तुरन्त हमारे सैनिकों ने मुकाबला करके

उनको मार दिया। यह अच्छा रहा कि सुबाहू ने उन्हें पहले ही चौकन्ना कर दिया था कि वे सर्पकेतु के सैनिक थे।" धीरमल्ल ने कहा।

यह बात है तो अपने सैनिकों को सन्नद्ध करो। कुछ सैनिकों को यहाँ पहरे पर रखकर बाकी को लेकर शहर में जाओ और सर्पकेतु के सैनिकों को मारो काटो।" चन्द्रवर्मा ने कहा।



"सब सैनिकों को तैयार कर दिया है। यशोवर्धन के जयजयकार के कारण मैं घबरा गया था। इसी कारण आपके पास भागा भागा आया हूँ।" धीरमल ने कहा।

तब तक शहर में कई जगह आग लग चुकी थी। एक राजमार्ग ही से नहीं, सब तरफ से चीत्कार और आर्तनाद सुनाई पड़ने लगे। चन्द्रवर्मा ने एक बार जलते हुए शहर को दीन दृष्टि से देखा। लम्बी आह छोड़कर वह कुछ सोचता, सीढ़ियाँ उतरकर महल के सामने आया। वहाँ चार पाँच सौ सशस्त्र सैनिक कतार में खड़े हुए थे। उनके पास अश्वारोही बड़े बड़े भाले लेकर तैयार खड़े थे। और भी कई थे।

चन्द्रवर्मा ने पचास सैनिक और दस आश्विकों को राजमहल की रक्षा के लिए नियुक्त करके, बाकी को दो भागों में विभक्त किया। एक भाग को सेनापति धीरमल्ल को सौंपते हुए कहा-"सेनापति! मैं राजमहल के द्वार से बाहर राजमार्ग में जाकर, पूर्व की ओर मुड़ूँगा। तुम अपनी सेना को लेकर पश्चिम की ओर मुड़ जाओ। दोनों इस तरह शत्रु सेना को चीरते हुए,



अर्ध चन्द्राकार में मुड़ते हुए उत्तर द्वार के पास पहुँचेंगे। अगर परिस्थितियाँ दुर्भाग्यवश विपरीत रहीं तो परिस्थितियों के अनुसार हम अपने अपने निश्चय करेंगे। इसके अतिरिक्त और कोई रास्ता नहीं है।"

"अच्छा हुजूर! मगर आप फ़िज़ूल के खतरों में अपनी जान जोखिम में न डालिए।" सेनापति धीरमल्ल ने चन्द्रवर्मा से कहा।

तुरन्त सेना के दोनों भाग "सूर्यवर्मा महाराजा की जय" चिल्लाते महल का आङ्गन पार कर नगर में घुम गये। तभी पूर्व की दिशा लाल लाल हो रही थी। सशस्त्र होकर सुबाहू घोड़े पर सवार था। उसने चन्द्रवर्मा को, उस तरफ जलते हुए घरों को दिखाकर कहा-"युवराजा! सर्पकेतु ने छल कपट से कुछ हद तक विजय पा ली है। उसकी तरफ से आये हुए लोगों में सुशिक्षित सैनिक बहुत ही कम हैं। बाकी सब लूटने के लिये आये हुए गाँव के लोग हैं। अगर हमने निर्दय होकर उनमें से कुछ को मार दिया तो बाकी भय के मारे सिर पर पैर रखकर भागेंगे। वे योद्धा नहीं हैं। लड़ना लड़ाना नहीं जानते हैं।"

चन्द्रवर्मा को यह सुझाव पसन्द आया। उसने अपने साथ के आश्विकों को, मशाल लिये, इधर उधर भागते लुटेरों की ओर भगाया। कहने की देर थी कि आश्विकों के भाले लुटेरों के हृदयों में, शरीरों में जा घुसे। तुरन्त "सूर्यवर्मा के सैनिक सूर्यवर्मा के सैनिक" के निनादों से वह सारा प्रान्त गुञ्जित हो उठा। उसके बाद, राजमार्ग के इधर उधर की गलियों में "सूर्यवर्मा के सैनिक? कहाँ हैं?" यह

आवाज़ ओर दौड़कर आते हुए घोड़ों की ध्वनि सुनाई दी। यकायक सर्वत्र कोहराम मच गया।

शत्रु सैनिकों को मारने के लिए चन्द्रवर्मा ने यह मौका अच्छा समझा। उसने अपने सिपाहियों में से आधे को गली के एक तरफ खड़ा कर दिया और आधों को दूसरी तरफ। शत्रु राजमार्ग तक पहुँचने के लिए बिना आगे पीछे देखे चले आ रहे थे। इस तरह आनेवालों से, दोनों तरफ से मुकाबला करने के लिए ही चन्द्रवर्मा ने यह प्रबन्ध किया था। व्यूह रचा था।

उसका प्रबन्ध सफल भी हुआ। विजयोल्लास में मस्त हो सर्पकेतु के सैनिक, यह बिना देखे ही कि राजमार्ग में क्या था, कौन थे, गली में से तेज़ी से राजमार्ग की ओर आने लगे। दोनों तरफ खड़े सशस्त्र चन्द्रवर्मा के सैनिक, आनेवालों पर भाले भोंकने लगे। प्रहार करने लगे। वहाँ क्या हो रहा था, यह जानकर इससे पहले कि वे पीछे भाग सके,



शत्रुओं में से बहुत से लोग चन्द्रवर्मा के सैनिकों द्वारा मारे गये।

इस विजय के कारण चन्द्रवर्मा के सैनिकों का आत्मविश्वास बढ़ गया। इसके बाद वे "सूर्यवर्मा की जय" चिल्लाते चिल्लाते राजमार्ग पर आगे बढ़े। जो कोई शत्रु सैनिक दिखाई देता, उसे भाले और तलवारों से मारते। नगरवासी भी युवराजा को, सैनिकों के साथ आता देखकर, जिसके पास जो हथियार था, उसे लेकर शत्रु का मुकाबला करने लगे। सब में नया उत्साह आ गया।

थोड़े समय में शत्रुओं को मारता चन्द्रवर्मा उत्तर द्वार के पास पहुँचा। धीरमल्ल

भी, जो शत्रुओं का संहार करने के लिए पश्चिम की ओर गया था, थोड़ी दूरी पर दिखाई दिया। उसके पीछे, पास में एक बड़ा अधिक दल भी आता दिखाई दिया।

देखते देखते धीरमल्ल अपने आश्विकों के साथ चन्द्रवर्मा के पास आया। उसने उससे कहा- "युवराजा, हमारा तुरन्त राजमहल के पास जाना अच्छा है। सर्पकेतु ने स्वयं कुछ और सैनिकों को लेकर शहर पर धावा बोल दिया है। उसकी असंख्य सेना का हम अगर अपने इने गिने सैनिकों को लेकर आमने सामने खड़े होकर मुकाबिला करेंगे तो वह आत्महत्या करने के बराबर ही होगा। दुर्ग की रक्षा करते हुए ही हम उनका मुकाबला कर सकते हैं।"

यह खबर कि सर्पकेतु कुछ और सैनिकों को लेकर आया है; चन्द्रवर्मा पर बिजली-सी गिरी। इसका मतलब यह था कि वह परोक्ष की चालें छोड़कर प्रत्यक्ष रूप से खुल्लमखुल्ला लड़ने निकला है।

चन्द्रवर्मा ने तुरन्त अपना घोड़ा पीछे मोड़ा। सुबाहू और धीरमल्ल ने अपने घोड़ों को उसके दोनों बाजुओं की ओर चलाया। सैनिकों को साथ लेकर सब बहुत तेज़ी से महल की ओर चले।

रास्ते में उन्हें कहीं भी शत्रु न मिले। जब वे महल के पास पहुँचे तो उन्हें द्वार पर शत्रु सैनिक और आश्विक दिखाई दिये। वे सब द्वार तोड़ने का प्रयत्न कर रहे थे। चन्द्रवर्मा ज़ोर से चिल्लाता अपने सैनिकों को लेकर उन पर टूट पड़ा।

(अभी और है)





कोशल देश के राजा के नीचे कई सामन्त थे। उनमें एक का नाम वीरसेन था। उसके मरते समय, उसके एक सयाना लड़का था। उसका नाम जयन्त था। जयन्त के साथ उसने एक लड़की को पाला-पोसा था, जिसका नाम मालिनी था। मालिनी एक वैद्य की लड़की थी। उसका पिता जड़ी बूटी की वैद्यक में बहुत प्रवीण था। उसने कई रामबाण औषधियाँ तैयार की थीं। उसने मरते समय मालिनी को वे औषधियाँ दीं और उसको यह भी बताया कि किस किस बीमारी के लिए उनका उपयोग करना था। पिता के मर जाने के बाद वीरसेन और उसकी पत्नी लक्ष्मीदेवी ने उसका अपनी लड़की की तरह पालन-पोषण किया।

मालिनी बहुत समझदार थी। मित-भाषिणी थी। सीधी सादी थी। यद्यपि सामन्त के घर उसको बहुत छूट थी, तो भी वह उस भेद को कभी न भूली जो उसमें और सामन्त के परिवार में था। इसलिए ही उसने जयन्त से प्रेम करते हुए भी, अपने प्रेम को किसी को न दिखाया।

क्योंकि वह रोज दिखाई देती थीं, उसमें किञ्चित मात्र भी घमण्ड न था, उसको आकर्षित करने के लिए वह कुछ भी न करती थी, इसलिए जयन्त ने कभी उसके बारे में सोचा तक नहीं।

वीरसेन की मृत्यु के बाद कोशल देश के राजा ने जयन्त को बुलाया। राजा की तरफ से शशिभूषण ने आकर जयन्त की माँ लक्ष्मीदेवी से कहा-"राजा के



दरबार में जो आपके पति का स्थान था वह अब आपके लड़के का है। राजा का निमन्त्रण आज्ञा के समान है। इस समय राजा रोगी हैं। राजवैद्यों ने बताया है कि उनके रोग की चिकित्सा नहीं हो सकती। इसलिए बिना देरी किये आप अपने जयन्त को मेरे साथ भेज दीजिये।"

"अरे, अफसोस! अगर इस समय मालिनी का पिता जीवित होता तो वह इस रोग को ठीक कर सकता था। वह साक्षात् धन्वन्तरी था।" लक्ष्मी देवी ने कहा।

यह सुनकर मालिनी की आँखों में आँसू आ गये। लक्ष्मी देवी ने सोचा कि वह अपने पिता को याद करके रो रही थी। परन्तु मालिनी इसलिए दुखी थी क्योंकि जयन्त जा रहा था। जयन्त के चले जाने के बाद मालिनी को हमेशा आँसू पोंछते देख लक्ष्मी देवी को सन्देह हुआ।

कुछ दिनों के बाद मालिनी ने लक्ष्मी देवी से कहा-"मेरे पिता ने मुझे अपनी दिव्य औषधियाँ दी थीं। मैं उनका उपयोग कर सकती हूँ। इसलिए में कोशल नगर जाकर राजा की चिकित्सा करना चाहती हूँ।"

लक्ष्मी देवी ने हँसकर पूछा-"तू कोशल नगर राजा की चिकित्सा करने जायेगी या जयन्त को देखने?" उसके यह बार बार पूछने पर मालिनी मान गई कि उसको जयन्त से प्रेम था। "परन्तु मैं यह नहीं चाहती कि मैं उसकी पत्नी ही बनूँ। आप सामन्त हैं और मैं आपके आश्रय में रहनेवाली अनाथिन। राजा की चिकित्सा करने के लिए ही में जा रही हूँ।"

लक्ष्मी देवी ने उसको कुछ नौकरों के साथ भेज दिया। मालिनी ने जल्दी ही

राजधानी पहुँचकर राजा के दर्शन किये और बताया कि वह क्यों आई थी।

राजा को बिल्कुल विश्वास न हुआ कि वह छोटी-सी मामूली लड़की उसके रोग की चिकित्सा कर सकेगी। उस बीमारी की दवा भी क्या हो सकती है, जिसके बारे में राजवैद्यों ने भी कह रखा हो कि वह सुधर नहीं सकती थी।

"जो तू दवा देगी, वह खाऊँगा। यदि बीमारी बढ़ी तो तेरा सिर कटवा दूँगा और यदि भगवान की कृपा से बीमारी ठीक हो गई तो मेरे कर्मचारियों में से जिस किसी से तुम विवाह करना चाहोगी उससे विवाह करवा दूँगा। हमारे सामन्त उन स्त्रियों से ही विवाह करते हैं जिन्हें मैं निश्चित करता हूँ। अगर तुम यह मेरी शर्त मानती हो तो तुम मेरी चिकित्सा कर सकती हो।" राजा ने कहा।

मालिनी ने यह जानकर राजा का इलाज किया। दो दिन में बीमारी ठीक भी हो गई। राजा के आनन्द की सीमा न रही। तीसरे दिन वह मालिनी को दरबार में ले गया। उसने मालिनी से कहा-"जो यहाँ



उपस्थित हैं, वे सब मेरी नौकरी करते हैं। इनमें जिसको तुम चाहो अपना पति चुन सकती हो।"

मालिनी ने चारों ओर दरबार में देखा। उसे एक जगह जयन्त दिखाई दिया। मालिनी ने उसे दिखाकर कहा-"मैं इनसे विवाह करूँगी, कृपा कीजिये।"

राजा ने जयन्त को बुलाकर कहा-"तुम इससे विवाह करो।" यह सुनते ही जयन्त आग-बबूला हो गया। "यह हमारे यहाँ हमारे भरोसे जीती रही है। नौकरी इससे मैं कैसे शादी कर सकता हूँ?"

मालिनी ने लज्जित हो सिर नीचा कर लिया-"महाराज! आपकी बीमारी ठीक हो गई है। यही काफी है।"

मालिनी के प्रति राजा अपना वचन पूरा न कर पाया था; यह बात तो थी ही, इसके अतिरिक्त वह यह न सह सकता था कि उसका कोई कर्मचारी उसकी आज्ञा का उल्लंघन करे। उसने जिद की कि जयन्त को मालिनी से विवाह करना ही होगा। दोनों का उसी दिन विवाह हो गया।

राजा, जयन्त को मालिनी से शादी करने के लिये बाधित कर सकता था। पर उससे प्रेम करने के लिए बाधित नहीं कर सकता था। विवाह होते ही जयन्त ने पत्नी से कहा-"तुमने मुझसे जबर्दस्ती शादी तो कर ली है। पर में तुम्हारे साथ नहीं रहूँगा। तुम तुरन्त मेरी माँ के पास चली जाओ।"

"मैं आपकी दासी हूँ। जैसा मेरे भाग्य में लिखा है, वैसा होगा।" मालिनी ने कहा। वह जिस काम पर गई थी वह पूरा हो गया था। राजा स्वस्थ हो गया। जिससे प्रेम किया था, उससे शादी भी हो गई थी। फिर भी वह भारी दिल



लिये लक्ष्मी देवी के पास गई। उसके जाते ही जयन्त ने उसके पास एक सन्देश भेजा। उसने लिखा था-"जब मेरी अंगूठी तुम्हारी अंगुली में आ जाये तभी मुझे पति पुकारना, पर याद रखो कि यह कभी होगा नहीं।" यह वाक्य पढ़ते ही मालिनी मूर्च्छित सी हो गई। लक्ष्मीदेवी ने अपनी बहू को बहुत आदर-सम्मान के साथ देखा। उसे यह देख दुःख होता था कि उसका लड़का उसके साथ ठीक व्यवहार नहीं कर रहा था। वह भरसक मालिनी को सान्त्वना देने का प्रयत्न कर रही थी।

जयन्त ने अपने सन्देश में यह भी लिखा था कि वह कोशल देश छोड़कर जा रहा था। वह तभी वापस आयेगा जब उसकी पत्नी वहाँ न रहेगी। उस दिन रात को मालिनी ने अपनी सास लक्ष्मीदेवी के नाम यह चिट्ठी लिखी-"पति को परदेश भेजकर मैंने बहुत बड़ा पाप किया है। इस पाप का प्रायश्चित करने के लिये मैं तीर्थ यात्रा पर जा रही हूँ। आप कृपया अपने लड़के को यह सन्देश भिजवाइये कि उस पत्नी से उसका पीछा छूट गया है, जिस पर उन्हें प्रेम न था।"





इसके बाद मालिनी बिना किसी से कहे तीर्थ यात्रा पर निकल गई।

इस बीच, जयन्त कोशल देश छोड़कर, काशी राज्य गया। वहाँ उसने काशी के राजा के यहाँ नौकरी कर ली। उसके नौकरी पर लगने के कुछ दिन बाद एक युद्ध शुरू हो गया। उस युद्ध में जयन्त ने खूब पराक्रम दिखाकर कीर्ति पाई। युद्ध में ही उसे अपनी माता का सन्देश मिला। उसे पता लगा कि मालिनी घर छोड़कर चली गई थी। वह खुशी खुशी घर वापस जाने की सोचने लगा।

इतने में मालिनी काशी नगर पहुँची। वह विमलादेवी नाम की स्त्री के यहाँ ठहरी। उसके पति जब जीवित थे तो वे बहुत रईस थे। परन्तु उनके गुजर जाने के बाद विमलादेवी और उनकी लड़की नीलवेणी गरीब हो गई। इसलिए विमलादेवी धनी यात्रियों को ठहराती और उनकी कृपा से अपना गुजारा करती।

नीलवेणी सुन्दर थी। उसकी उम्र भी शादी के लायक हो गई थी। जयन्त ने नीलवेणी को देखकर उससे प्रेम करना शुरु किया। उससे शादी करने के लिए कहा।

क्योंकि नीलवेणी बड़े घर की थी इसलिए उस में नीच बुद्धि न थी। जब उसे मालूम हुआ कि जयन्त का विवाह हो चुका था और उसने पत्नी को छोड़ दिया था वह उसे देखने के लिए भी न जाती। विमलादेवी यह न जानती थी कि मालिनी ही जयन्त की पत्नी थी, उसने उससे सारी बातें कह दी।

सब सुनने के बाद मालिनी को एक बात सूझी। उसने विमलादेवी को बता दिया कि वह कौन थी। उसने उसकी

सहायता भी माँगी। विमलादेवी ने उसकी सहायता करने का वचन दिया।

"इस बार जब वे खबर भेजें कि वे आपकी लड़की से बात करना चाहते हैं, तो आप अपनी लड़की से उनको आने के लिए कहलवाइये। उनके आने पर मैं आपकी लड़की की जगह उनसे बातें करूँगी। आप इसी तरह मेरी मदद कर सकती हैं।" मालिनी ने कहा। उसने उससे यह भी कहा कि वह इस सहायता के लिए अच्छा ईनाम भी देगी। शायद मालिनी की सहायता करने के लिए नहीं तो ईनाम के लालच में, माँ बेटी यह करने के लिए मान गई।

अगले दिन जब जयन्त अपने देश जाने की तैयारी में था कि किसी ने आकर बताया कि मालिनी प्रयाग में मर गई थी। यह भी मालिनी की चाल थी। यह खबर सुनकर जयन्त बड़ा खुश हुआ। उसने सोचा कि अब नीलवेणी जरूर उससे शादी करेगी। उसने उसको देखने के लिए खबर भिजवाई। और नीलवेणी भी उसकी आशा के अनुसार, उस दिन रात को उससे बात करने के लिए मान गई।



उस दिन रात को अन्धेरा हो जाने के बाद जयन्त आया। नीलवेणी का कमरा उसे दिखाया गया। उसे यह न मालूम था कि उस अन्धेरे में, जो स्त्री उसकी प्रतीक्षा कर रही थी, वह उसकी पत्नी ही थी। जयन्त ने उसके सामने अपने प्रेम की बात कही।

मालिनी ने भी उसके प्रति अपने प्रेम का वर्णन किया। उसका मन बल्लियों उछलने लगा। मालिनी यद्यपि नीलवेणी की आवाज में बातें कर रही थी पर भाव उसके अपने थे। इस प्रकार का मौका उसे पहले कभी न मिला था।

"नीलवेणी! मैंने कभी स्वप्न में भी न सोचा था कि तुम मुझ से इतना प्रेम करती हो। मैं कल अपने देश जा रहा हूँ। वहाँ सब प्रबन्ध हो जाने के बाद तुम्हें बुलवाकर तुम से शादी करूँगा।" जयन्त ने कहा।

"आप अपनी निशानी के लिए मुझे अपनी अंगूठी दीजिये।" मालिनी ने कहा। उसने जयन्त की अंगूठी ले ली और कोशल देश के राजा की ईनाम में दी हुई अंगूठी उसको दे दी।

मालिनी की बातें याद करता करता जयन्त अगले दिन अपने गाँव गया। उसी दिन मालिनी भी, विमलादेवी और नीलवेणी को साथ लेकर कोशल देश की राजधानी के लिए निकल पड़ी। परन्तु उनके वहाँ पहुँचने से पहले ही राजा जयन्त की माँ को देखने चला गया था। वह भी वहीं गई। लक्ष्मीदेवी को देखते ही राजा ने मालिनी के बारे में पूछा। परन्तु जयन्त ने आकर लक्ष्मीदेवी को बता दिया था कि मालिनी मर गई थी। यह सुन राजा को बड़ा दुःख हुआ। राजा के साथ आये हुए शशिभूषण ने कहा- "जयन्त बडा अभागा



है। उसने राजा, माँ और पत्नी का तो बुरा किया ही उसने अपना भी बुरा किया। उसे मालिनी जैसी सुन्दरी, बुद्धिमती, विवेकवती स्त्री फिर कहीं मिलेगी?"

राजा ने जयन्त को बुलवाया। जयन्त ने आकर राजा को नमस्कार किया। उसने अपनी गलतियों के लिए माफी भी माँगी।

"तुम्हारी पूज्य माँ का लिहाज करके तुम्हें इस बार माफ कर देता हूँ।" राजा अभी कह ही रहा था कि उसको जयन्त की अंगुली में वह अंगूठी दिखाई दी, जो उसने मालिनी को ईनाम में दी थी। मालिनी ने यह प्रतिज्ञा भी की थी कि वह किसी को वह अंगूठी न देगी, अगर कभी कोई खतरा आया भी तो, उसे वह वापस कर देगी।

उस अंगूठी को जयन्त की अंगुली में देखकर राजा को सन्देह हुआ कि उसी ने मालिनी को मरवाया होगा। उसने जयन्त को पकड़ने के लिए सिपाहियों को आज्ञा दी। जब राजा ने पूछा कि वह अंगूठी उसके पास कैसे आई थी तो जयन्त ने झूठ बोल दिया कि किसी स्त्री ने उसपर वह फेंकी थी।



इतने में वहाँ विमला देवी और नीलवेणी आई।

"महाराज! इस जयन्त ने यह प्रतिज्ञा कर रखी है कि मेरी लड़की से विवाह करेगा। उससे कहिये कि वह अपना वचन निभाये।" विमला देवी ने कहा।

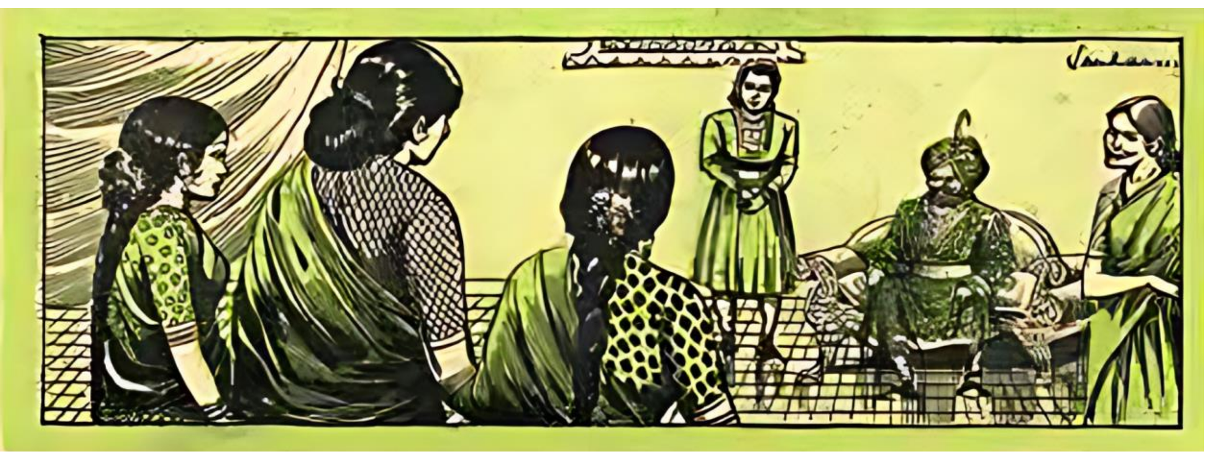
जयन्त ने उठकर राजा से कहा कि उसने नीलवेणी से शादी करने का वचन न दिया था। तुरन्त नीलवेणी ने उसकी अंगूठी निकालकर कहा- "यह अंगूठी मुझे देकर और मेरी अंगुली की अंगूठी उसने ले ली है।"

इस नाटक को पूरा करने के लिए मालिनी ने जयन्त की अंगूठी नीलवेणी को दे रखी थी। परन्तु राजा ने यह सुनते ही सन्देह किया कि मालिनी की हत्या में उन दोनों का भी हाथ था।

"जयन्त की अंगूठी तुम्हारे पास कैसे आई? सच बताओ नहीं तो सख्त दण्ड दिया जायेगा।" राजा ने उनसे कहा।

"महाराज, गुस्सा न कीजिये। हमने यह अंगूठी एक से खरीदी है। आप चाहें तो उनको अभी बुलाकर लाती हूँ।" विमलादेवी जाकर मालिनी को बुला लाई।

मालिनी को जीता जी देखकर, राजा, जयन्त की माँ, बहुत आनन्दित हुये। उसकी कथा सुनकर जयन्त के आश्चर्य की भी सीमा न रही। उस दिन रात की बातें वह अभी तक न भूला था। जब उसे मालूम हुआ कि वे बातें करनेवाली उसकी पत्नी थी तो उसकी खुशी का ठिकाना ही नहीं रहा। उसने अपनी पत्नी से माफी माँगी। उसके साथ वह सुखपूर्वक जीवन बिताने लगा।





[५]

[अपनी प्रेयसी को नगर के बाहर उद्यान में जादू के घोड़े की रखवाली करने के लिये छोड़कर जब राजकुमार अम्मार अपने माता पिता से बातचीत करने के लिये गया हुआ था, सिद्ध वहाँ आया। राजकुमारी को फुसलाकर उसे जादू के घोड़े पर चढ़ाकर वह रूम देश पहुँचा। वहाँ के सुल्तान ने उसे पकड़कर जेल में डलवा दिया। सुल्तान ने राजकुमारी से शादी करनी चाही पर वह "पागल" हो गई। इस बीच राजकुमार अम्मार, अपनी प्रेयसी को खोजता खोजता रूम नगर पहुँचा। क्योंकि परदेशियों को बिना सुल्तान के दर्शन के नगर में न घुसने दिया जाता था, अम्मार को उस दिन रात को सैनिकों ने कैद में रखा। वहाँ सिद्ध और उस में बातचीत हुई। अम्मार जानता था कि वह सिद्ध था पर सिद्ध अम्मार को न पहचान सका।]

अगले दिन सवेरे सैनिक अम्मार को कैद से सुल्तान के सामने ले गये। सैनिकों ने बताया कि वह परदेशी था, अन्धेरा हो जाने के कारण वह पिछले दिन हाज़िर न किया जा सका था।

"तुम किस देश के हो? तुम्हारा नाम क्या है? वृत्ति क्या है? हमारे राज्य में किस काम पर आये हो?" सुल्तान ने अम्मार से पूछा।



"मेरा नाम हरजा है। मैं फारस का रहनेवाला हूँ। मैं मानसिक रोगों की चिकित्सा करता देश देश में घूमता फिरता हूँ। बड़ी बड़ी किताबों, ज्योतिष शास्त्र को देख देखकर मैं इलाज नहीं करता। मैं मन्त्र भी नहीं जपता।" अम्मार ने निडर होकर कहा।

यह सुन सुल्तान को बड़ी खुशी हुई। "मुझे तुम जैसा वैद्य ही अभी चाहिये। मैं एक सुन्दर स्त्री से विवाह करने जा रहा था कि भूतों ने आकर उसका दिमाग खराब कर दिया। अगर तुमने उसका इलाज करके उसको ठीक कर दिया तो जो तुम माँगोगे मैं वह दूँगा।" सुल्तान ने कहा।

"अल्लाह की मेहरबानी से हुजूर खुशहाल रहें। जरा यह तो बताइये कि किस हालत में उनका दिमाग बिगड़ गया था।" अम्मार ने पूछा।

सुल्तान ने सारी कहानी सुनाकर कहा-"मैंने उस बूढ़े को जेल में डलवा दिया है।"

"लकड़ी का घोड़ा कहाँ है?" अम्मार ने पूछा।

"उसको मेरे सैनिकों ने हिफाजत से रख रखा है।" सुल्तान ने कहा

उस घोड़े को एक बार फिर से देखकर यह जानने की इच्छा हुई कि उसकी कीलें ठीक काम कर रही हैं कि नहीं। अगर घोड़ा बिगड़ न गया हो तो उसका कार्यक्रम एक तरह बनता, अगर बिगड़ गया हो तो दूसरी तरह। इसलिये उसने सुल्तान से कहा-"हुजूर, मैं उस घोड़े को एक बार देखना चाहता हूँ। क्योंकि हो सकता है कि उनके पागलपन और घोड़े में कोई सम्बन्ध हो।"

"इस पर हमें क्या आपत्ति हो सकती है?" सुल्तान यह कहकर अम्मार को उस जगह ले गया, जहाँ घोड़ा रखा हुआ था। अम्मार ने घोड़े की जाँच पड़ताल करके यह जान लिया कि घोड़े की कीलें सब ठीक थीं।

"अल्लाह हुजूर को हमेशा खुशहाल रखें। अब हमें रोगी को देखना है। मुझे उम्मीद हो रही है कि मैं उनको ठीक कर सकूँगा।" उसने सुल्तान से कहा।

दोनों मिलकर नहर के कमरे में गये। वह हाथ हिला रही थी। छाती पीट रही थी। कपड़े फाड़ फाड़कर इकट्ठा कर रही थी। अम्मार उसे देखते ही ताड़ गया कि वह सब दिखाने के लिए था, उसे किसी भूत ने नहीं धर दबोचा था। उसका दिमाग नहीं बिगड़ा था। उसने उसके पास जाकर कहा-"त्रिभुवन सुन्दरी, तुझे मनः शान्ति प्राप्त हो।"

यह सुनते ही राजकुमारी ने अपने प्रियतम को देखा और उसे पहचान भी लिया। वह इतनी खुश हुई कि एक बार चिल्लाई और मूर्छित हो गई। सुल्तान ने सोचा कि वैद्य को देखते ही भूत रफू चक्कर हो





गया है। उसे कमरे के दरवाजे के पास खड़ा रहने के लिए कहकर अम्मार राजकुमारी के पास गया। सेवा शुश्रूषा करके उसकी मूर्छा हटा दी। फिर उसने उससे चुपचाप कहा-"अगर थोड़ा और धीरज रखा तो हम इस सुल्तान की कैद से भी छूट जायेंगे। मैं सुल्तान से कहूँगा कि तुम्हें भूत पकड़े हुए था।" राजकुमारी ने भी धीमे से कहा-"ठीक है।"

अम्मार ने सुल्तान के पास जाकर कहा-"इन्हें भूत ने पकड़ रखा था। मैंने उसे छुड़ा दिया है। अब आप जाकर उनसे अच्छी तरह बातचीत कीजिये। आप जो कुछ उन्हें कहना चाहते थे, वह कहिये। सब आप के लिए अच्छा ही होगा।" चकित होकर सुल्तान राजकुमारी नहर के पास गया। उसको आता देख नहर ने सलाम करके कहा-"मुझे देखने आये हैं? धन्य हूँ।"

यह सुन सुल्तान आनन्द में मूर्छित होते होते बचा। उसने यहाँ खड़े गुलामों को बुलाकर कहा-"तुम इनकी देख-भाल करो। स्नानशाला ले जाकर इन्हें नहलाओ, धुलाओ। अच्छे कपड़े पहनाओ और सजाओ।" राजा की आज्ञा के अनुसार उन्होंने उसको नहलाया, उसे रानी के अनुरूप पोषाक पहनाई। गले में रत्नों का हार भी डाला। वह पूर्णिमा के चान्द की तरह चमकती धीमे धीमे सुल्तान के पास आई।

सुल्तान ने अम्मार की ओर मुड़कर कहा-"तुम मामूली वैद्य नहीं हो। तुमने मुझे बहुत खुश किया है। मैं तुम्हारा एहसान कैसे चुकाऊँ? अल्लाह तुम्हे सब कुछ दें। यही मैं चाहता हूँ।"

"महाप्रभु! अभी कुछ चिकित्सा बाकी है। आपकी अनुमति हो तो उसे भी

पूरी कर दूँगा। वह जो घोड़ा है उसमें भूत है, इसपर मुझे पहले भी सन्देह था। उस भूत का दहन संस्कार करने के लिए हमें इनके साथ वहाँ जाना होगा, जहाँ यह मिला था। अगर हमने यह नहीं किया तो हर महीने यह भूत इन्हें सताता ही रहेगा। मुझे हर बार उसे भगाना होगा। हमें इस झमेले में नहीं पड़ना चाहिए।"

सुल्तान इसके लिए मान गया। सुल्तान, उसके नौकर-चाकर, अम्मार और नहर घोड़े को लेकर, नगर के बाहर के मैदान में पहुँचे। राजकुमार ने लकड़ी के घोड़े को एक जगह रखवाया। उसपर राजकुमारी को चढ़ाया। सुल्तान के नौकर-चाकरों को दूर रहने के लिए कह सुल्तान से कहा-"महाप्रभु! मैं आपको इस घोड़े में रहनेवाले भूत को दिखाऊँगा। मैं इस घोड़े पर चढ़कर मन्त्र पढ़ूँगा और यह निष्प्राण घोड़ा कदम रखता आपके पास आयेगा। फिर आप उनको घोड़े पर से उतारकर, उनसे शादी कर सकते हैं। उसके बाद कभी भी भूत उनको न सता सकेगा।"



सुल्तान चकित तो था ही, अब उसमें नया उत्साह भी आ गया। यह सब कैसे होगा, यह देखने के लिए वह उतावला हो उठा। अम्मार सुल्तान के पास से चलकर घोड़े के पास गया। उसपर चढ़कर उसने कील घुमाई। सीधा आकाश में वह उठा और अन्तर्धान हो गया।

पर सुल्तान यह न जान सका कि खेल खतम हो गया था। वह दिन भर उस मैदान में खड़ा खड़ा इन्तज़ार करता रहा। बाद में भी, वह महल में जाकर घोड़े की प्रतीक्षा करता रहा।

उसकी आशा निराशा हो गई। उसने काल कोठरी से बूढ़े सिद्ध को बुलाकर कहा-"अरे अधम! क्यों न बताया था कि इस घोड़े में भूत था? चिकित्सा करनेवाले वैद्य और उस लड़की को भूत आकाश में उड़ा ले गया। जाने उनका क्या होगा। यही नहीं, मैंने उस लड़की को बहुत से जेवर जवहरात भी दिये थे। वे सब चले गये। इसलिए मैं अब तेरा सिर कटवा दूँगा।"

उसके हाथ हिलाते ही एक सैनिक ने सिद्ध का सिर काट दिया।

इस बीच राजकुमार अम्मार अपनी प्रेयसी के साथ सकुशल अपने नगर पहुँच गया। इस बार वह उद्यान में न रुका। सीधे राजमहल की छत पर उतरा। जब वह नीचे गया तो उसके माता पिता, तीनों बहिनें बड़े शोक में बैठे थे। उसे देखते ही उनकी जान में जान आ गई। वे बड़े खुश हुए।

राजकुमार अम्मार का और सना की राजकुमारी नहर का बड़े धूम-धाम से विवाह हुआ। एक महीने तक जलूस, उत्सव, दावतें, मनोरञ्जन होते रहे। अम्मार ने अपनी सारी कथा लिखकर दूतों द्वारा अपने ससुर और सास के पास भेजी। उनके परिवार के लिए बहुत-से भेंट उपहार भी भेजे।

साबूर बादशाह ने जादू के घोड़े को तुड़वा-फुड़वा दिया। उसकी कीलें सब नष्ट करवा दीं। तब जाकर उसे तसल्ली हुई। ससुर और पिता के मर जाने के बाद अम्मार ने दोनों देश पर सुखपूर्वक राज्य किया।

(समाप्त)





बगदाद शहर का खलीफा, हसन अल रशीद एक दिन वेष बदलकर शहर में घूमने निकला। उसके साथ मन्त्री जाफ़र और अङ्गरक्षक मसूर भी वेष बदले हुए थे। जब वह शहर में घूम फिरकर, टिग्रिस नदी के पत्थर के पुल के पास गया तो वहाँ एक अन्धा बूढ़ा भिखारी, आने जानेवालों से भीख माँग रहा था।

बूढ़े को देखकर खलीफा को दया आई। उसने उसके हाथ में एक सोने की दीनार रखी। तुरन्त उस अन्धे ने स्खलीफा का हाथ ज़ोर से पकड़कर कहा-"बाबू, अल्लाह आप पर मेहरबानी करेगा। आपको मेरी कनपटी पर चपत मार कर जाना होगा।" उसने उसका हाथ छोड़कर कुर्ता पकड़ लिया।

"अरे माई, कैसे यूँहि चपत मार दूँ? और अगर तुम जैसे बूढ़े को मैंने मारा तो अल्लाह क्या मुझे माफ करेगा?" कहते हुए खलीफा ने उसकी पकड़ छुड़वानी चाही।

परन्तु अन्धे ने उसे जाने न दिया। उसने कहा-"बाबू, बिना आपसे चोट खाये मैं आपकी खैरात नहीं ले सकता। अगर आपको मेरी बात मालूम हो जाये तो आप मेरी इस ख्वाइश को भी माफ कर देंगे।"

रास्ते में आने जानेवाले यह देख शायद हँसे, खलीफा को यह डर लगने लगा। बिना चोट खाये बूढ़ा पकड़ छोड़ता नहीं मालूम होता था। इसलिए वह बूढ़े की कनपटी पर चपत मारकर आगे बढ़ा।

खलीफा ने जाफर से कहा- "इस बूढ़े की कहानी जानने के लिए मेरी बहुत इच्छा



हो रही है। तुम पीछे जाकर उससे कहो कि यह मेरा हुक्म है कि कल वह दरबार में हाजिर हो।" जाफर ने वही किया।

अगले दिन, दुपहर की नमाज के बाद, खलीफा के महल में आते ही जाफर ने उसके सामने अन्धे भिखारी को हाजिर किया। खलीफा की आज्ञा पर वह बूढ़ा अपनी कहानी यों सुनाने लगा-"मेरा नाम बाबा अब्दुला है। मैं छुटपन से ऊँटों को हाँककर जिन्दगी बसर करता आया था। मैंने अपनी मेहनत से अस्सी ऊँट जमा कर लिये। उनको यात्रियों और व्यापारियों को किराये पर देकर हर साल काफी फायदा कमाया करता था। मैं यह सपने देखता कि मुझे ईराक में सबसे अधिक धनी बनना है।

एक बार मुझे भारत भेजे जानेवाले माल को बसरा बन्दरगाह पहुँचाना पड़ा। बसरा से में खाली ऊँट लेकर आ रहा था तो मुझे पानी की एक जगह पर ऊँटों को पानी पिलाने के लिए और स्वयं खाना खाने के लिए रुकना पड़ा। उसी समय वहाँ एक फकीर आया। रेगिस्तान के रीति रिवाज़ के मुताबिक हम दोनों ने भोजन आपस में बाँट लिया। खा-पीकर गप्पें मारी ।

बातों बातों में, मैंने उस फकीर को बताया कि में क्या क्या सपने ले रहा था। उसने हँसकर कहा-"जब भाग्य साथ दे तो एक क्षण में सब मिल सकता है। उस हालत में तेरा धन के बारे में सपने लेना बेवकूफ़ी ही है न? भूमि में गड़े हुए खज़ानों के बारे में क्या तुमने कभी नहीं सुना है? मेरा तुमसे मिलना, शायद तुम्हारी किस्मत की ही बात है। मेरे साथ आओ।"

यह सोचकर कि इतने दिनों बाद मेरा भाग्य जगा है, मैं फकीर के साथ चला।

एक घण्टे के बाद हम एक घाटी में पहुँचे। उस घाटी में एक पहाड़ी थी। "यही वह स्थान है। तुम अपने ऊँटों को खोल दो। उनपर धन के थैले रखेंगे।" फकीर ने कहा। मैं ऊँटों से निवृत्त होकर जो पहुँचा तो पहाड़ी की तलहटी में ईधनों को फैलाकर फकीर आग जला रहा था। आग में कुछ फेंकते हुए उसने कुछ मन्त्र पढ़े, जो मुझे समझ में न आये। घुयें के खतम होते ही पहाड़ी में एक पत्थर दो भागों में हट गया और अन्दर एक गुफा दिखाई दी।

उस गुफा में, सोने की मुहरें, रत्न-राशि थी। मैंने जल्दी-जल्दी दोनों हाथों में सोना बटोर लिया और अपने थैलों में भरने लगा। यह देख फकीर ने कहा-"अरे गरीब! आखिर तेरे ऊँट कितना सोना ढो सकेंगे? पीछे रखी उस रत्न-राशि को तो देखो। उनका भार सोने से सौ गुना कम है और मूल्य हज़ार गुना अधिक। अपने ऊँटों पर तुम इसे चढ़ाओ।"

उसकी बात ठीक जानकर मैं थैलों में रत्न रखकर ऊँटों पर लादने लगा। मैं जबतक काम करता रहा, फकीर एक तरफ





खड़ा, मुझे देखता मुस्कराता रहा। मेरा काम खतम होते ही उसने कहा-"अब हम गुना बन्द करके जा सकते हैं।" उसने एक सोने की मर्तबान में हाथ डालकर एक पिटारी निकाली।

क्या अच्छा होता अगर मेरे पास अस्सी हजार ऊँट होते.... अफसोस कि अस्सी ही थे। फकीर को, उस पिटारी को कुड़ते में रखता देखा, मैंने यह जानना चाहा कि वह क्या चीज़ थी।

"इसमें, आँखों पर लगानेवाले सुरमे के सिवाय कुछ नहीं है।" फकीर ने कहा। जब मैने मर्तबान में से पिटारी लेनी चाही तो उसने मुझे रोकते हुए कहा-"आज के लिए यह एक काफी है।"

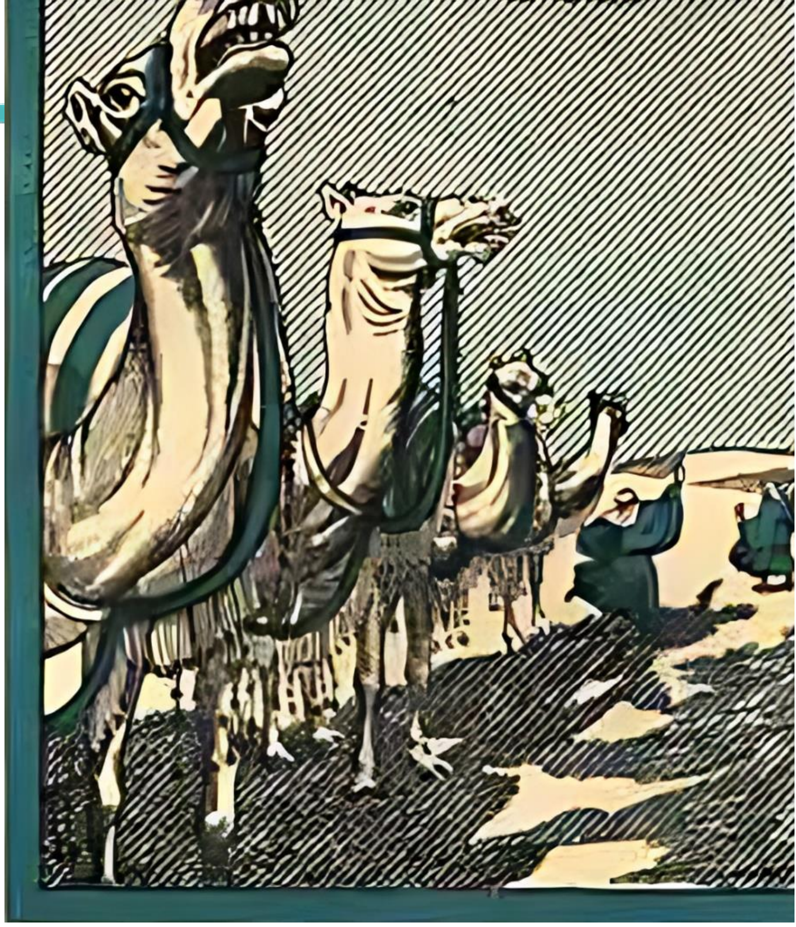
हमारे बाहर आने पर फकीर ने कोई मन्त्र पढ़ा, पत्थर पहले की तरह जुड़ गया। जोड़ भी न दिखाई देता था।

"हम जिस जगह से चले थे, अब वहाँ पहुँच जाएँगे। तब इन रत्नों को आपस में आधा आधा बाँट लेंगे।" फकीर ने कहा। हम वापस आ रहे थे तो मैंने सोचा कि उसे आधा देना अनावश्यक था क्योंकि यदि मेरे ऊँठ न होते तो वह उन रनों को ला नहीं सकता था। यही नहीं....यदि मैं साथ नहीं होता तो शायद वह गुफा खुलती भी न? मैंने ही मेहनत करके उन थैलों को ऊँठों पर लादा। सिवाय खड़े-खड़े मुस्कराने के उसने कुछ न किया। जब हम उस जगह पहुँचे तो मैंने कहा-"फकीर.... तुम तो जगह जगह फिरते हो। तुम्हें चालीस ऊँट रत्न किसलिए चाहिए? वे कहाँ थे यह दिखाने के लिए मुझे आधा हिस्सा देना होगा?"

इस बात पर फकीर को गुस्सा न आया। "अरे पागल। मैं इसको गरीबों में बाँट दूँगा। नहीं तो मुझे धन की क्या जरूरत है? शायद तुम्हें यह नहीं मालूम है कि एक एक ऊँट पर इतने रत्न हैं कि एक एक महाराजा के पास भी न होंगे। अगर तू चालीस ऊँट भी ले गया तो तुम जैसा कोई धनी बगदाद में नहीं होगा। इसलिए व्यर्थ लालच न करो।"

मैं जानता था कि यह बात सच थी। पर इसके लिए मैं नहीं माना। "मैं यह नहीं कह रहा हूँ। ऊँटों को चलाना बड़ा मुश्किल काम है। तुम्हें आदत नहीं, इसलिए तुम चालीस ऊँट चला न पाओगे। वे सब तुम्हें न दूँगा। यही नहीं.... क्योंकि तुम यह जानते ही हो कि गुफा कहाँ है, जब चाहो तब जाकर रत्न बटोर ला सकते हो। कुछ ऊँट काफी हैं।"

"वह ठीक है। मुझे केवल बीस ऊँट दो।" फकीर ने कहा। क्योंकि उसने मेरी बात आसानी से मान ली थी इसलिए सन्तुष्ट होकर मैंने उसे बीस ऊँट दे दिये। वह बसरा की ओर चला और मैं बगदाद की ओर।



परन्तु मैं थोड़ी दूर ही गया था कि मुझे लालच फिर सताने लगा। फकीर केवल बीस ऊँट ही नहीं ले जा रहा था, मुझे लग रहा था, जैसे रत्नों के साथ वह मेरे प्राणों को भी लादकर ले जा रहा हो। मैं अपने ऊँठों और फकीर को पुकारता पीछे की ओर भागा। फकीर मेरी पुकार सुनकर रुक गया।

मैंने फकीर की आमद खुशामद कर, तरह-तरह के बहाने बनाकर, आँखें गीली कर उन बीस ऊँठों को भी वापस देने के लिए उसे मनाया। फिर मैंने गले लगाकर उससे विदा ली।

"भाई, खुदा ने खुश होकर तुम्हें जो धन दिया है, उसे अक्लमन्दी से खर्च करना।" फकीर ने कहा।

अगर मैं तभी चला जाता तो अच्छा था। पर मेरे दिन अच्छे न थे, मुझे याद आ गया कि उस फकीर ने कुर्ते में एक पिटारी छुपा रखी थी। मुझे लगा कि उसके बिना लिये मेरा भाग्य पूरी तरह न खिलेगा। उस में, इन रत्नों से भी अधिक कीमती कोई चीज़ होगी, नहीं तो यह फकीर उसको अपने पास रखकर ये रत्न इतनी आसानी से नहीं देता।

"भाई एक बात बताओ। उस सुरमे का क्या करोगे? तुम वह पिटारी मुझे क्यों नहीं दे देते?" मैने कहा। फकीर अगर उसे देना न चाहता तो मैं उसे मार कर ही उससे लेने के लिए तैयार था। परन्तु उसने मुस्करा कर उस पिटारी को मुझे देते हुए कहा-"अगर मैं तुम्हारी कुछ मदद कर सकूँ तो कहो।"

मैने पिटारी का ढक्कन खोलकर कहा-"भाई, इस सुरमे का क्या उपयोग है, जरा वह भी बता दो। पुण्य कमाओ।"



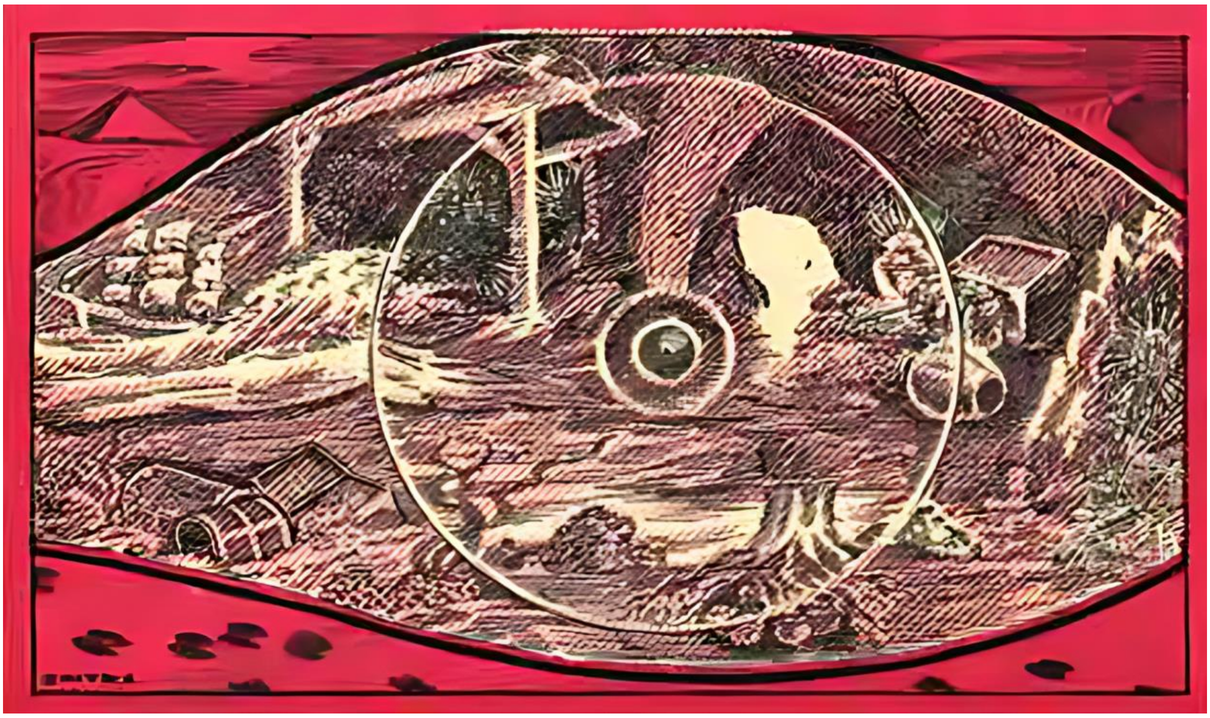
"इस सुरमे को बाईं आँख के किनारे लगाने से भूमि में रखे खजाने दिखाई देंगे। दायीं आँख में लगाने से दोनों आँखें अन्धी हो जायेंगी।" फकीर ने कहा।

यह कह कर फकीर जा रहा था कि मैने उसका कुड़ता पकड़ कर कहा-"इसकी करामात भी तुम अपने आप दिखाओ। इसे तुम जरा मेरी बायें आँख में लगाओ।"

फकीर ने कुछ सुरमा निकाल कर बायें आँख पर लगा कर कहा-"अब दायीं आँख बन्द करके बायी आँख से देखो।"

मैने वही किया। मेरी बायी आँख के सामने का दृश्य कुछ न दिखाई दिया। परन्तु पहाड़ों में, बड़े बड़े पेड़ों के नीचे, समुद्र के नीचे, खजाने बगैरह दिखाई दिये। खजानों में जेवर, सोना, चान्दी, हीरे, आदि दिखाई दिए। आखिर मैने दायी आँख खोली तब जाकर मैं हर मामूली चीज देख सका।

उस सुरमे के प्रभाव को देखकर उसके बारे में फकीर ने जो बात कही थी, उस पर मुझे सन्देह होने लगा। मैं यह विश्वास न कर सका कि जो सुरमा एक आँख पर लगाने से इतनी आश्चर्यजनक



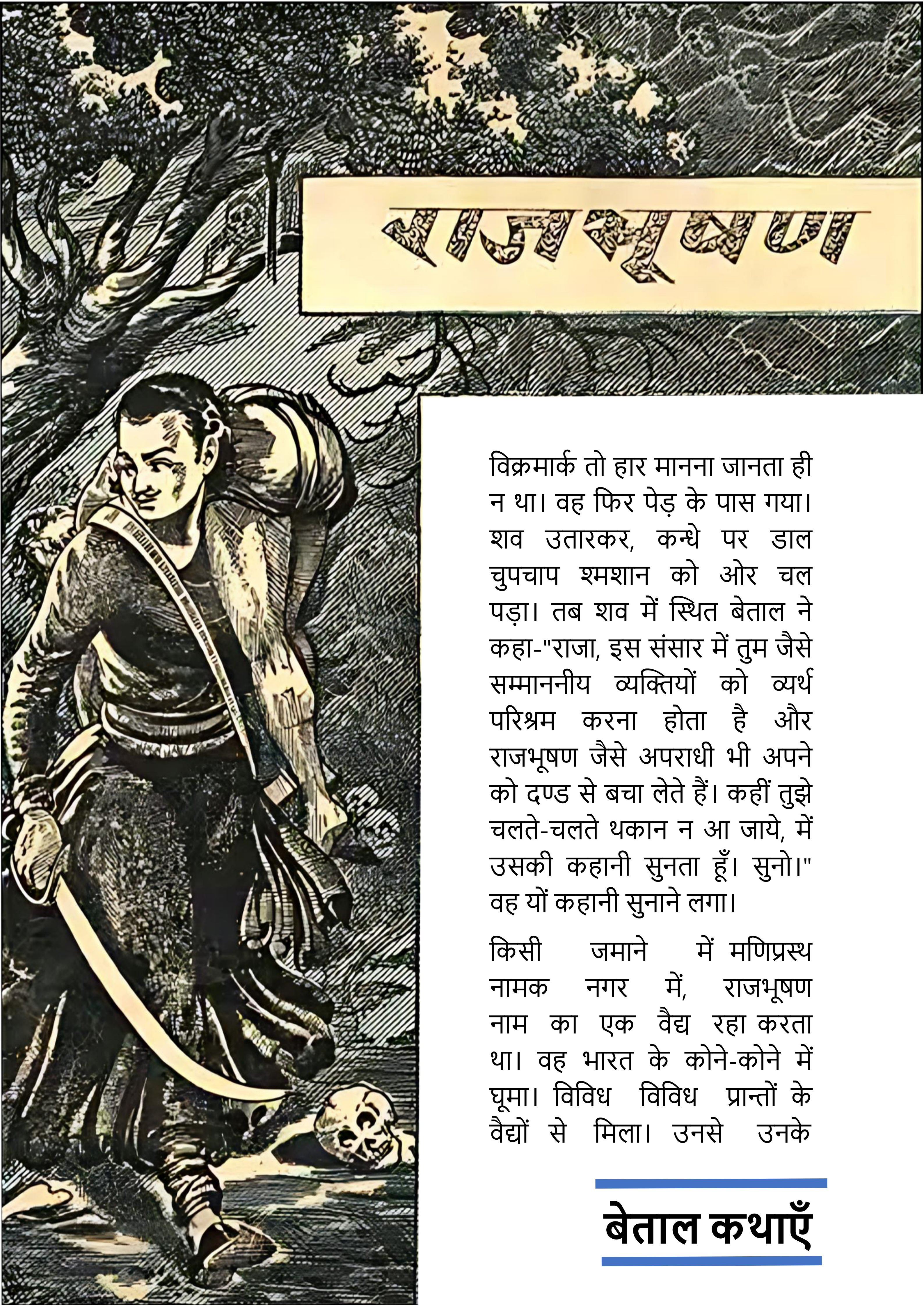
दृष्टि दे सकता था, वह दूसरी आँख पर लगाने से अन्धा कर देगा। मुझे उस सुरमे को दायीं आँख पर लगाने से रोकने के लिए उस फकीर ने वह बात कही थी। "भाई इस सुरमे को मेरी दायीं आँख पर लगाओ। मुझे मालूम है कि ऐसा करने से जो बायीं से मैं खजाने देखूँगा, वे दायीं आँख से देखने से मेरे वश में हो जायेंगे। तुम शायद मुझे धोखा देना चाहते हो। पर मुझे धोखा देना इतना आसान नहीं है।"

इस बार फकीर को मुझ पर गुस्सा आ गया। "तुम शायद अपना नाश स्वयं मोल लेना चाहते हो। मैं वह काम न करूँगा। मुझे जाने दो।" उसने कहा। पर मैने उसे जाने न दिया। मैने उससे दायीं आँख पर भी सुरमा लगवाया। तुरन्त मेरी दोनों आँखें अन्धी हो गई।

मैं गिड़गिड़ाया कि वह मेरी दृष्टि मुझे वापस कर दे। परन्तु फकीर ने कोई जवाब न दिया। वह मेरे अस्सी ऊँट हाँक कर ले गया। मैं वहीं रह गया। अगले दिन उस तरफ से एक काफिला गुजरा.... उसने मुझे बगदाद पहुँचाया। उस दिन से मैं भीख माँग माँगकर जी रहा हूँ। जो कोई मुझे दान देता है मैं उससे चोट खाता हूँ। यह मैंने अपना नियम बना रखा है।

यह कहानी सुनकर खलीफा ने कहा-"बाबा अब्दुल्ला! तुम्हें अपने लालच का पहिले ही दण्ड मिल चुका है। अब भिक्षा न माँगो। मैं तुम्हे रोज दस दीनारें दूँगा। जिन्दगी भर तुम्हारे भरण-पोषण का आज से में जिम्मेवार हूँ।" उसने अन्धे भिखारी के भरण-पोषण का प्रबन्ध कर दिया।





राजभूषण

विक्रमार्क तो हार मानना जानता ही न था। वह फिर पेड़ के पास गया। शव उतारकर, कन्धे पर डाल चुपचाप श्मशान को ओर चल पड़ा। तब शव में स्थित बेताल ने कहा-"राजा, इस संसार में तुम जैसे सम्माननीय व्यक्तियों को व्यर्थ परिश्रम करना होता है और राजभूषण जैसे अपराधी भी अपने को दण्ड से बचा लेते हैं। कहीं तुझे चलते-चलते थकान न आ जाये, में उसकी कहानी सुनता हूँ। सुनो।" वह यों कहानी सुनाने लगा।

किसी जमाने में मणिप्रस्थ नामक नगर में, राजभूषण नाम का एक वैद्य रहा करता था। वह भारत के कोने-कोने में घूमा। विविध विविध प्रान्तों के वैद्यों से मिला। उनसे उनके

रहस्य जाने। आखिर वह मणिप्रस्थ के राजा के यहाँ राजवैद्य नियुक्त हुआ। वह आयु में छोटा था, पर वह वैद्य तो बड़ा था ही; साथ साथ बड़ा पराक्रमी भी था।

मणिप्रस्थ नगर का राजकुमार जयप्रद बड़ा दुष्ट और घमण्डी था। उसने आसपास के अपने समवयस्क युवकों को तनख्वाह पर रख रखा था। वह उनको साथ लेकर खुले साण्ड की तरह शहर में घूमता। सब का अपमान करता, तङ्ग करता, दुष्टों के साथ आवारागिर्दी करता, सबको सताकर वह हमेशा खुश होता।

जयप्रद ने एक-दो बार राजभूषण का परिहास किया। उसकी परवाह न की। राजभूषण को इस कारण गुस्सा भी आ गया। राजभूषण ने अपने कोप को रोक करके कहा- "महाराजा, हर व्यक्ति को उचित मर्यादा देना सीखिये।"

क्योंकि घमण्डी को हर स्वाभिमानी व्यक्ति घमण्डी लगता है, इसलिए राजकुमार को राजभूषण पर गुस्सा आया। "इस राज वैद्य की कभी खबर लूँगा।" उसने सोचा। उसे एक दिन बदला लेने का मौका भी मिल गया।



अन्धेरे होने के कुछ देर बाद, जयप्रद अपने नौकर वीरवर्मा के साथ घोड़े पर चढ़कर एक गली में से आ रहा था कि राजभूषण भी घोड़े पर सवार हो उनके सामने से आया। राजकुमार ने अपना घोड़ा, राजभूषण के घोड़े के पास ले जाकर कहा-"मैं जान गया कि तुम्हारी किस तरह मर्यादा करनी है। यही है वह मर्यादा जो मैं तुम्हें दूँगा।" उसने अपनी तलवार निकाली।

राजभूषण को भी तलवार निकालनी पड़ी। दोनों घोड़ों से उतरकर लड़ने लगे। राजकुमार का नौकर वीरवर्मा भी घोड़े से उतरकर, तलबार निकालकर, राजकुमार की आज्ञा की प्रतीक्षा करता खड़ा रहा।

जयप्रद बातों में जितना चतुर था बहादुरी में उतना न था। राजभूषण तलवार से उसके सिर पर चोट करनेवाला था कि वीरवर्मा ने उसका बार रोकने की कोशिश की; पर उसका सिर दो टुकड़े हो गया। उसी समय जयप्रद घोड़े पर सवार हो चम्पत हो गया।

यह जानकर कि उसका उस राज्य में रहना ठीक न था, वह घोड़े पर सवार हो,





नगर छोड़कर चला गया। अगर सवेरे तक राज्य छोड़कर वह चला गया तो उसे किसी प्रकार का भय न था। इसलिए वह रात-भर घोड़ा तेज़ी से चलाता रहा। परन्तु राज्य की सीमा पार करने से पहले ही सवेरा हो गया।

घोड़ा थक गया था। राजभूषण थक गया था। दोनों को ही खाना-पीना न मिला था। सवेरे होने के बाद, उसे एक ग्राम दिखाई दिया। उस दिन किसी के घर विश्राम कर, रात होते ही उसने फिर निकल जाना चाहा।

शत्रुञ्जयवर्मा नाम के व्यक्ति के घर उसे आश्रय मिला। शत्रुञ्जय बूढ़ा था। वह बड़ा रईस तो न था पर बड़े खानदान का था। उसका दामाद ही उस ग्राम का अधिकारी था। उसका लड़का ही वीरवर्मा था। उसकी मृत्यु की खबर अभी वहाँ न पहुँची थी। शत्रुञ्जय को न मालूम था कि उसने अपने लड़के के हत्यारे को ही आश्रय दिया था। न राजभूषण को ही मालूम था कि उसको आतिथ्य देनेवाला बूढ़ा उसी आदमी का पिता था जिसको उसने पिछले दिन मार दिया था।

राजभूषण ने दिन-भर आराम किया। उस दिन शामको जब वह शत्रुञ्जय के साथ गप्पें मार रहा था तो उसको सच पता लगा। जब राजभूषण को पता लगा कि शत्रुञ्जय का लड़का ही उसके हाथ मारा गया था तो उसमें भय और पश्चताप की भावना एक साथ उठीं। अब उसका वहाँ रहना ठीक न था। वीरवर्मा की मृत्यु की खबर इस गाँव में आकर रहेगी ही। उसको बूढ़ा जरूर दण्ड देगा। उसका दामाद ही ग्रामाधिकारी है।

इसलिए राजभूषण ने खड़े होकर कहा- "अब मुझे विदा दीजिये। आपकी

कृपा से मैने और मेरे घोड़े ने थकान दूर कर ली है। अभी मुझे बहुत दूर जाना है।"

शत्रुञ्जय ने कहा-"यह क्या भाई? थोड़ी देर में अन्धेरा होनेवाला है। कल क्यों नहीं जाते?"

"नहीं, नहीं, मुझे रात को सफर करने की आदत है।" कहता कहता राजभूषण जाने के लिए तैयार हो गया। इतने में शत्रुञ्जय के दामाद के नौकर ने कहा-"बाबू, मालकिन को.... मालकिन को असमय में प्रसव वेदना हो रही है। वे मूर्छित हो रही हैं। वैद्य कह रहा है कि उसके बस की बात नहीं है। किसी बड़े वैद्य को बुलाना पड़ेगा। क्या किया जाय? बताइये।"

जब शत्रुञ्जय को पता लगा कि उसकी लड़की की बुरी हालत थी तो उसकी दिल की धड़कन बढ़ी। चिन्ता बढ़ी। एक तरफ़ अन्धेरा बढ़ रहा था। यदि बड़े हकीम को बुलाना था तो अवश्य मणिप्रस्थ जाना पड़ता।

उसको उतना चिन्तित देख राजभूषण ने अपने जाने का इरादा बदल लिया। उसने शत्रुञ्जय से



कहा-"यदि आपको कोई आपत्ति न हो तो रोगी को मैं देखूँगा। मैं भी बड़ा वैद्य हूँ। में मणिप्रस्थ का रहनेवाला हूँ।"

शत्रुञ्जय की जान में जान आई। वह राजभूषण को साथ लेकर अपनी लड़की के घर गया। राजभूषण ने रोगी को देखा, उसकी नाड़ी देखी। "मेरा आना अच्छा हुआ। इसकी हालत बहुत खराब है। परन्तु मैं इसके प्राणों की रक्षा कर सकता हूँ। शायद सवेरे होने से पहले प्रसव भी हो जाये। मेरा यह प्रयत्न रहेगा कि दोनों जीवित रहें। आप फिक्र न कीजिये।"

आधी रात के समय मणिप्रस्थ से आमाधिकारी के पास राजा का आदेश आया। "कल रात को राजभूषण नाम के राजवैद्य ने राजकुमार जयप्रद, और उसके साथी वीरसिंह पर निष्कारण तलवार मारी। वीरवर्मा को मार कर वह फरार हो गया है। अगर वह राजद्रोही, तुम्हारे गाँव या तुम्हारे आसपास के गाँव में आवे तो उसकी सुनवाई करना और फाँसी दे देना।"

अपने लड़के की मृत्यु की खबर पाते ही शत्रुञ्जय ढेर सा हो गया। उसके एक ही लड़का वीरवर्मा था। वह इस भरोसे में था कि किसी दिन वह सुधर जायेगा और उसके खानदान की कीर्ति को बनाये रखेगा। वह भरोसा यकायक काफूर हो गया।

उस दुख में, उसको सहसा अपना अतिथि याद आया। उस अतिथि ने अपना नाम तो नहीं बताया था, पर बाकी सब बातें उसके बारे में ठीक पड़ती थीं। वह मणिप्रस्थ का था। बड़ा वैद्य था। रात भर सफर करके सवेरे ग्राम पहुँचा था। वही राजभूषण है, उसी ने उसके इकलौते लड़के को मारा है; यह शत्रुञ्जय को



पूर्णतः स्पष्ट हो गया। बूढ़े ने उसको वहीं खतम करके, बदला लेने की सोची। वह बिना किसी को कुछ कहे, अन्दर घर में भागा। उसे एक जगह कुल्हाड़ी दिखाई दी। उसको लेकर वह अपनी लड़की के कमरे में गया। उसकी लड़की पलङ्ग पर लेटी हुई थी। राजभूषण हाथ में कुछ पकड़कर एक तरफ बैठा हुआ था।

"राजभूषण" शत्रुञ्जय जोर से चिल्लाया।

राजभूषण ने पीछे मुड़कर देखा। शत्रुञ्जय को यदि कोई सन्देह था तो वह भी जाता रहा। परन्तु उसी समय शत्रुञ्जय को उसके हाथ में एक रूपवान बच्चा दिखाई दिया।"

"मेरा काम ठीक ठीक हो गया है। न आपकी लड़की को न इस बच्चे को अब कोई खतरा है।" राजभूषण ने कहा।

शत्रुञ्जय के हाथ से कुल्हाड़ी नीचे गिर गई।

"बाबू, तुम पर बड़ी आफत आनेवाली है। तुम तुरन्त अपने रास्ते पर चले जाओ।" शत्रुञ्जय ने कहा।



राजभूषण तुरन्त निकल गया। और सवेरा होने से पहले दूसरे राज्य में चला गया और वहीं बस गया।

बेताल ने यह कहानी सुनाकर कहा-"राजा मुझे एक सन्देह है। राजभूषण जब वह जान गया था कि उसने अपने शत्रु के घर आतिथ्य पाया था तो वह शत्रुञ्जय की लड़की का इलाज करन के लिए क्यों रह गया था? जो अपने प्राण बचाने के लिए मणिप्रस्थ से भाग कर आया था वह शत्रुञ्जय से बचकर क्यों न भागा? इसका क्या अर्थ है? यही नहीं शत्रुञ्जय ने कुल्हाड़ी से उसे मारने की अपेक्षा क्यों उसे सावधान करके भेजा था? अगर इनके कारण तुमने जान बूझकर न बताये तो तेरा सिर टुकड़े टुकड़े हो जायेगा।"

"राजभूषण को अपने प्राणों पर मोह था। पर उस कारण वह वैद्य के धर्म को छोड़नेवाला न था। शत्रुञ्जय की लड़की को ठीक करने में उसने अपना अतिथि धर्म भी निभाया था। और शत्रुञ्जय की बात यह है कि वह उसके द्वारा अपने लड़के को खो बैठा था, पर उसके द्वारा पुनः अपनी लड़की को और पोते को भी उसने पाया था। दोनों प्राणों की रक्षा करने के लिए राजभूषण ने अपने प्राणों की परवाह न की थी। भाग जाने के मौके को भी वह खो बैठा था। यह याद कर शत्रुञ्जय उसे न मार सका।" विक्रमार्क ने कहा।

राजा का इस प्रकार मौन भङ्ग होते ही बेताल शव के साथ अन्तर्धान हो गया। और पेड़ पर जा बैठा।

(कल्पित)





[१६]

[बीस वर्ष बाद जब रूपधर स्वदेश पहुँचा तो उसको अपने घर जाने के लिए भिखारी का वेष धरना पड़ा। यह भेद केवल उसका लड़का धीरमति हो जानता था। रूपधर की पत्नी, पद्ममुखी से विवाह करने के लिए उसके घर जमा हुये, उसकी सम्पत्ति खराब करने वाले दुष्टों ने उस बूढ़े भिखारी का बहुत अपमान किया। परन्तु रूपधर ने सब सह लिया। वह बदला लेने के लिए मौके की प्रतीक्षा में था। उस दिन सबके चले जाने के बाद हॉल में रूपधर और धीरमति ही रह गये थे।]

रूपधर ने धीरमति की ओर मुड़कर कहा-"बेटा! दीवारों पर रखे हथियार लेकर, समानवाले कमरे में रख दो। अगर कोई पूछे कि वे कहाँ हैं तो कहना कि उनपर जङ्ग चढ़ रहा था, इसलिए उनको अलग रख दिया हैं।

धीरमति ने अपनी माँ की दासियों में सबसे बड़ी दासी बहुकीर्ति को बुलाकर कहा-"नानी! दासियों को कहो कि वे अपने अपने कमरों में चली जायें और अन्दर से कमरे बन्द कर लें। पिताजी के चले जाने के बाद किसी ने भी इन



हथियारों की परवाह न की। देखो, इनपर कैसे जङ्ग चढ़ गया है। अब चूँकि मैं बड़ा हो गया हूँ इसलिए उनको ठीक तरह रखने की जिम्मेवारी मुझपर है।"

"अच्छा बेटा, घर की सारी जिम्मेवारी तुम ही लो।" बहुकीर्ति ने कहा। वह बूढ़ी छुटपन में रूपधर की दाई थी।

उसके जाते ही रूपधर और धीरमति ने दीवारों पर टङ्गी ढाल, भाले आदि, निकालकर, समानवाले कमरे में जाकर रखे। इसके बाद रूपधर को हॉल में छोड़कर धीरमति अपने सोने के कमरे में चला गया।

थोड़ी देर बाद, पद्ममुखी नीचे उतरकर हॉल में एक आसन पर बैठ गई। दासियों ने अङ्गीठियों में नया ईन्धन रखकर आग जला रखी थी। एक दासी ने रूपधर को देखकर पूछा-"अरे बूढ़े, अभी यहीं हो? जो खाया है क्या वह काफी नहीं है?"

"अरी पगली, क्या बकवास कर रही है? तुम्हें मालूम है कि मैं उनसे बातें करने जा रही हूँ, फिर तुमने यह बकवास क्यों की?" पद्ममुखी ने उस दासी को डाँटा डपटा। रूपधर के लिए अपने सामने एक कुर्सी रखवाई। रूपधर के बैठ जाने के बाद उसने पूछा-"आप कौन हैं? आपका कौन देश है? आपका वंश-गोत्र क्या है?"

रूपधर ने अपने बारे में एक कहानी गढ़कर सुना दी। उसने कहा कि वह सिसली देश का रहनेवाला था। युद्ध के लिए जाते समय रूपधर उसके घर में अतिथि होकर भी रहा था। उसको विश्वास दिलाने के लिए उसने यह भी बताया कि रूपधर ने उस समय क्या कपड़े पहने हुए थे, उसके सेवक कौन थे। वे कपड़े वही थे जो पद्ममुखी ने उस समय अपने पति को दिये थे। उनका वर्णन सुनते

ही पद्ममुखी अपना दुःख काबू में न रख सकी। उसको उस भिखारी बूढ़े पर बहुत विश्वास हो गया।

उसने बहुकीर्ति को बुलाकर कहा-"यह अतिथि तुम्हारे मालिक के मित्र हैं। इनके पैर धोओ।" बहुकीर्ति गरम और ठण्डे पानी को एक बर्तन में मिलाकर लाई। वह उसके पैर धोने लगी। रूपधर ने अपने कपड़े घुटनों के ऊपर खींचे। उसको रूपधर के पैर पर एक दाग दिखाई दिया। वह उसको पहचान गई। उसके हाथ में रखा पानी का बर्तन धड़ाम से नीचे गिर गया। पानी बिखर गया। उसने चिल्लाने के लिए मुख खोला ही था कि रूपधर ने उसका मुख बन्द करके कहा-"माँ, मेरा रहस्य खोलकर मुझे नष्ट न करो। बीस वर्ष मुसीबतें झेलकर घर पहुँचा हूँ। अभी कुछ कष्ट बाकी रह गये हैं। जब तक वे भी न खतम हो जायें तब तक मेरा रहस्य न खोलना।" बहुकीर्ति इसके लिए मान गई।

उसने जो दाग देखा था वह एक धाव का था, जो रूपधर को छुटपन में लगा था। बात यों थी। जब वह



बच्चा ही था कि उसके मामाओं ने भेंट उपहार देने के लिए उसे बुलवाया। एक दिन रूपधर, अपने नाना और मामाओं के साथ शिकार खेलने गया। उसने सबसे पहिले एक जङ्गली सूअर को देखा। उसको उसने मार दिया। पर सूअर ने मरने से पहले रूपधर पर अपने दान्त मारे। जख्म हो गया और उसका दाग रह गया।

पद्ममुखी न जानती थी कि बहुकीर्ति ने उसके पति को पहचान लिया था। उसके आते ही उसने पूछा-"मेरे सामने एक बहुत बड़ी समस्या है। अबतक मेरा



लड़का छोटा था, हमेशा मुझे पकड़े-पकड़े फिरता था। इसलिए फिर शादी करके बर से बाहर जाने की ज़रूरत न थी। अब वह बड़ा हो गया है। अब उसके लिए मुझसे भी अधिक मुख्य उसकी सम्पत्ति है। इन राजकुमारों को, जो मुझसे स्वयम्बर करना चाहते हैं, उसकी सम्पत्ति को खराब करता देख, उसे बहुत बुरा लग रहा है। इसलिए मुझे शादी करनी ही होगी। इसके लिए मैंने एक उपाय सोचा है। मेरा पति बारह कुल्हाडियों को, एक के बाद एक खड़ा करके, उनके मूठ के छेदों में बाण छोड़ता था। जो मेरे पति के धनुष से, बारह कुल्हाड़ियों के मूठ के छेदों में से बाण निकाल देगा, मैंने उससे विवाह करने का निश्चय किया है।"

फिर वह अपने कमरे में जाकर लेट गई। रूपधर हॉल के सामने बैल के चमड़े पर, मेड़ों की खालें डालकर लेट गया। उसे नींद न आई, वह रात भर बदले के बारे में सोचता रहा। सवेरा होते ही उसने देवताओं की प्रार्थना की।

प्रातः काल सब अपने अपने काम पर निकल गये। सूअरों का रखवाला तीन मोटे सूअरों को लाया। उसने रूपधर को देखकर पूछा-"ये दुष्ट क्या तुम्हें ठीक तरह देख रहे हैं कि नहीं?"

"उनमें कुछ भी स्वाभिमान नज़र नहीं आता। दूसरों के घर बैठकर, इस तरह व्यवहार करनेवालों को भगवान जरूर दण्ड देते हैं।" रूपधर ने कहा।

वे बातें कर रहे थे कि गड़ियारा कालू भी वहाँ आया। वह अपने नये मालिकों के भोजन के लिए बकरियाँ और मेमने लाया था। वह उनको बाहर बाँध रहा था। रूपधर को देखकर उसने पूछा-

"अभी तुम यहीं हो ये भिखारी? भीख माँगने के लिए इतने बड़े शहर में तुझे कोई और घर नहीं मिला?" रूधर ने इनका जवाब न दिया। वह आगबबूला हो रहा था।

इतने में सुखप्राप्ति नाम का ग्वाला एक गौ और कई बछड़ों को लेकर आया। उसने रूपधर को देखकर, सूअरों के रखवाले से पूछा कि वह कौन था और किस देश का था; क्योंकि उसे देखते ही उसको उसका पुराना मालिक याद हो आया था। उसके आँखों में पानी आ गया। "भाई, हमारा मालिक भी तुम जैसे कहीं दर दर भटक रहा होगा। हम तो इसी भरोसे बैठे हैं कि कभी न कभी वे वापस आयेंगे ही। नहीं तो क्या हम इन खाऊ दुष्टों की नौकरी करते?" उसने कहा।

रूपधर ने उससे कहा-"तुम अक्लमन्द दीख पड़ते हो। घबराओ मत। तुम्हारे यहाँ रहते ही तुम्हारा मालिक फिर वापस आयेगा और इन सब को मार भगायेगा।"

"वह होना ही चाहिये, तब क्या मेरे हाथ खाली रहेंगे?" सुखप्राप्ति ने कहा। ठीक उसी समय दुष्ट, धीरमति को मारने के लिए एक और चाल सोच रहे थे।



इस बीच एक ने कहा-"भाइयो, कुछ अपशकुन दीख रहे हैं। यह चाल नहीं चलेगी। धीरमति की हत्या के बारे में बाद में देखा जायेगा। भोजन के लिए चलें। आओ।" सब उठकर हॉल में आये। कई पशुओं को काटकर आग में भूनने लगे। रोटी और पेय वगैरह आये। सब खाने की तैयारियाँ करने लगे।

दरवाजे के पास, धीरमति ने रूपधर के लिए एक पुरानी कुर्सी और मेज रखवाई। उसने अपने पिता के सामने रोटी और पेय रखकर कहा-"आराम से खाओ। कोई



तुम्हारा अपमान न करेगा। यह आम सड़क नहीं है। मेरे पिता का घर है। मैं प्रार्थना करता हूँ, कि सब जरा सोच समझकर काम लें। नहीं तो अच्छा न होगा।"

यह सुन सब को आश्चर्य हुआ। दुर्बुद्धि ने अपने मित्रों की ओर देखकर कहा-"देखा, यह कैसी शेखियाँ मार रहा है। आज उसका अच्छा दिन है। यदि अपशकुन न होते, तो हम उसका मुख बन्द कर देते।" ये बातें धीरमति ने सुनी तो पर उसने परवाह न की।

उन दुष्टों में, अश्वनिपुण नाम का एक घमण्डी था। वह बहुत रईस था। पद्ममुखी उसकी सम्पति देखकर, उससे विवाह करेगी,

वह यह सोच दूर से आया हुआ था। उसने अपने साथियों से कहा-"अरे भाई, एक बात तो सुनो। यह बूढ़ा भिखारी हमारे साथ बैठा खा पी ही रहा है। हम अब इसको एक सीढ़ी और ऊपर चढ़ायें। यह देखो, मैं इसको क्या ईनाम देता हूँ।" उसने बछड़े के खुर को सिर पर फेंका। रूपधर, सिर को एक तरफ मोड़कर, चोट से बच गया। वह दीवार पर जा लगा।

धीरमति ने गुस्से में, उलाहना देते हुये कहा-"अश्वनिपुण, तुम खूब निशाना चूके। अतिथि ने अपना सिर एक तरफ मोड़ लिया। अगर उसके सिर पर चोट लगती तो मेरा भाला तेरी छाती पर होता। मैं कुछ कहने जा रहा हूँ। ध्यान देकर सुनिये। आपका मेरे पशुओं को काटकर खाना, शराब पीकर हो हल्ला करना मुझे बिल्कुल पसन्द नहीं है। मैं अब इसे नहीं सह सकूँगा। मैं अब सयाना हूँ।" थोड़ी देर तक कोई कुछ नहीं बोला।

आखिर एक ने कहा-"मित्रो! इस भिखारी के बारे में मत झगड़िये। धीरमति, हम एक ही बात चाहते हैं, वह है तुम्हारी माँ का स्वयम्बर। वह किस बात की प्रतीक्षा में है? हममें से किसी एकसे शादी क्यों नहीं कर लेती?"

दरवाजे के सामने ही पद्ममुखी बैठी थी और यह सब सुन रही थी। वह उठकर उस कमरे की ओर गई जहाँ उसके पति का समान रखा हुआ था। उसने ताला खोला। उस कमरे में रूपधर के बाण, तरकश वगैरह थे। उस धनुष को किसी ने रूपधर को भेंट में दिया था। युद्ध में जाते समय रूपधर उसको साथ नहीं ले गया था। पद्ममुखी कुछ देर तक उस धनुष को पकड़कर रोती रही। फिर वह आँखें पोंछकर, धनुष और तरकश लेकर नीचे उतर आई। नौकर एक बड़े थाल में बिना मूठ की कुल्हाडियों को लाये।

पद्ममुखी ने हॉल के द्वार पर खड़े होकर, मुँह पर दामन कर, इस प्रकार कहा-"सब ध्यान से सुनें। आप सब मुझ से विवाह करने के



लिए आये और मेरे घर में धरना देकर हमारी चीजें खा रहे हैं, पी रहे हैं। सिवाय यह दिखाने के कि आप सब मुझ से शादी करना चाहते हैं, आप में से किसी ने भी अपनी योग्यता दिखाकर मुझे पारितोषिक के रूप में पाने का प्रयत्न न किया।

यह मेरे पति का धनुष है। आप में से जो कोई इस धनुष पर बाण लगाकर बारह कुल्हाड़ियों में से उसे निकाल देगा, मैं उससे शादी करूँगी।" यह कहकर उसने सूअरों के रखवाले को बुलाकर उसको धनुष और कुल्हाड़ियाँ देकर सबको दिखाने के लिए कहा। उनको हाथ में लेते समय सूअरों के

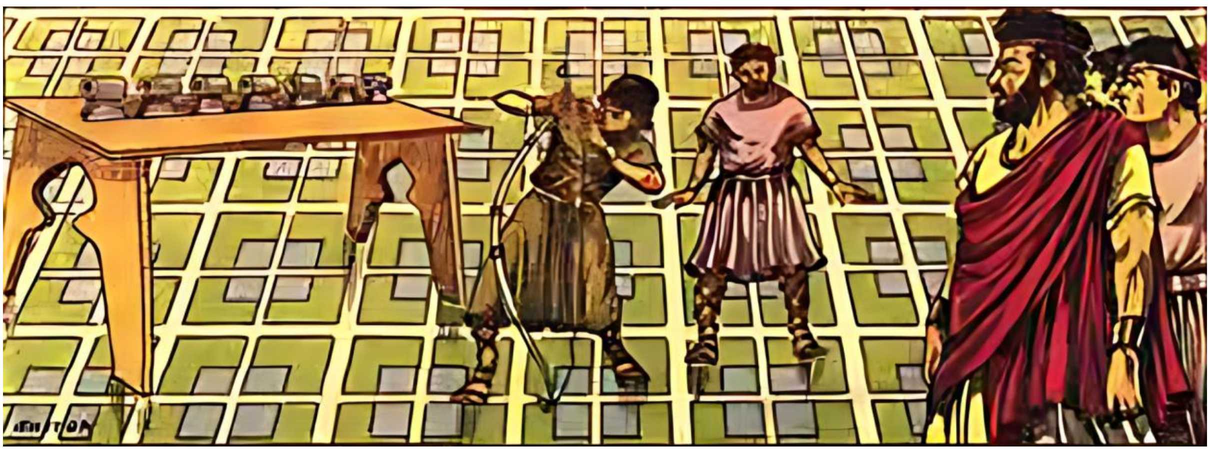
रखवाले के आँखो में आँसू आ गये। दूर खड़े सुखप्राप्ति को भी दुःख हुआ। दुर्बुद्धि ने उन दोनों का मज़ाक करते हुए कहा-"क्यों औरतों की तरह रो रहे हो? खाना है तो बैठकर खाओ। रोना है, तो बाहर जाकर रोओ। हमारे सामने अब बड़ा काम आ पड़ा है। उस धनुष पर बाण चढ़ाना आसान काम नहीं है। रूपधर के समान बलवान अब यहाँ कोई नहीं है। मैं छुटपन में उन्हें यह करते देखा करता था।"

उसने ऊपर से तो यों कहा था, पर अन्दर ही अन्दर उसे भरोसा था कि धनुष मोड़कर वह उस पर बाण चढ़ा सकता था और उन मूठों को छेद सकता था।

धीरमति को यकायक जोश आ गया। "ओहो, अब माँ का शादी करके ससुराल जाने का समय आ गया है। यह देखकर मैं पागल की तरह खुश हो रहा हूँ। मेरी माँ की तरह इस संसार में कोई नहीं है। पर यह मेरे कहने से क्या लाभ? देखूँ तो मैं पिताजी का धनुष उठाकर रख सकता हूँ कि नहीं।"

उसने उठाकर कुल्हाड़ियों को एक जगह रखा और धनुष को ज़मीन पर सीधा खड़ा करके, धागा लगाने के लिए तीन बार कोशिश की। उसे लगा कि उसने यदि ज़ोर से प्रयत्न किया तो वह उसे लगा सकेगा। परन्तु रूपधर ने ईशारा किया कि वह वैसा न करे। उसने उसे रखते हुए कहा-"अरे मैं तो कमज़ोर हूँ। निकम्मा। आप बड़े लोग उपस्थित हैं ही, आप अपने बल पराक्रम को दिखाइये।"

(अभी और है)





कैरो नगर में अबू कासिम नाम का दवा बेचनेवाला रहा करता था। वह इतना लोभी था कि कुछ न कहो। उसे व्यापार में बहुत लाभ होता पर वह एक पैसा भी न खर्चता। फटे पुराने चीथड़े पहनता। जाने उसकी पगड़ी भी कब की थी। उसका रङ्ग क्या था बताना मुश्किल था। रङ्ग उड़ चुका था। पर इन सब से अधिक मशहूर थी उसकी चप्पल। वे बहुत पुरानी थीं। न मालूम कितने ही मोचियों ने कितनी हीं कीले उनमें ठोकी थीं, कितनी ही बार मरम्मत की थी। सालों से उसकी इतनी मरम्मत की जा रही थी कि वे भारी हो गई थीं।

अबू कासिम की चप्पलों के बारे में, लोगों में कितनी ही कहावतें चल पड़ी थीं। बोझा ढ़ोनेवाले कहते....."अरे यह बोझा तो अबू कासिम की चप्पलों जितना भारी है।" किसी के पेट में दर्द होता तो वह कहा करता-"मैंने जो कुछ खाया है, वह अबू कासिम की चप्पलों की तरह काम कर रहा है। "

एक दिन, अबू कासिम को व्यापार में अच्छा लाभ मिला। और कोई व्यापारी होता तो साथ के व्यापारियों को दावत देता। अच्छा लाभ मिला था इसलिये उसने स्नान-शाला में जाकर नहा धोकर, यह "त्यौहार" मनाने की ठानीं, क्योंकि स्नान-शाला की ओर गये उसे सालों हो गये थे। उसने अपनी दुकान बन्द कर दी। चप्पल कन्धे पर डाली, ताकि पहनने से वे घिस घिसा न जायें।

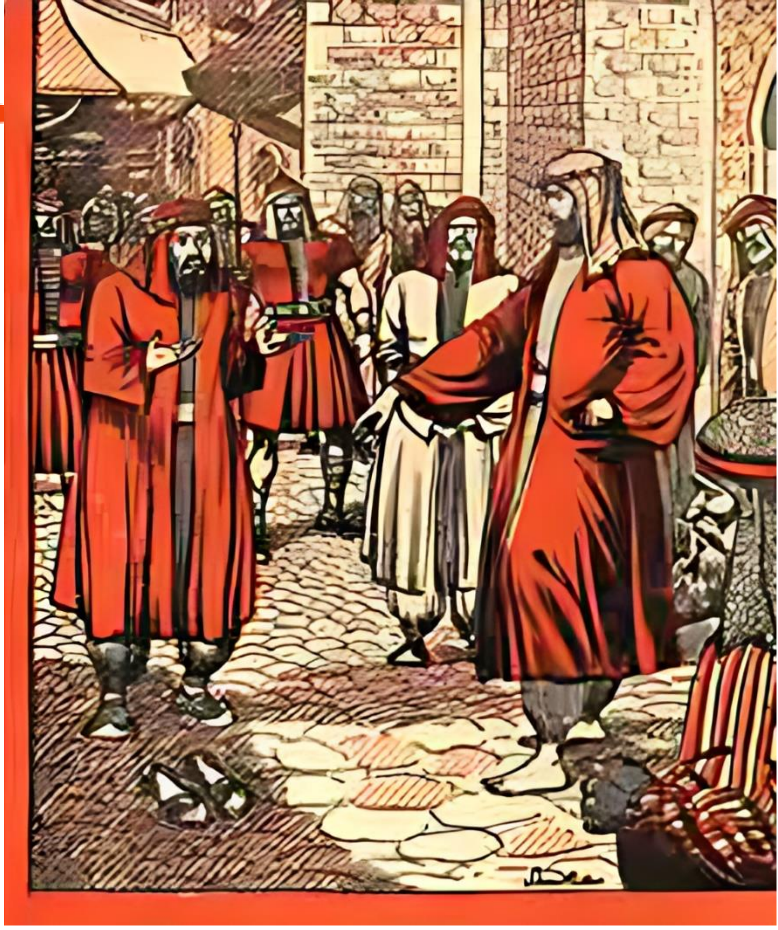
रुक्मणी

वह स्नानशाला गया। जहाँ सबने चप्पलें बाहर रख रखी थीं। वह भी उन्हें छोड़कर अन्दर गया।

अबू कासिम के शरीर पर कई वर्षों की मिट्टी जमी हुई थी, स्नान करानेवालों को उसका शरीर कई बार मलना पड़ा। जब अबू कासिम स्नान करके बाहर निकला तो सूर्यास्त हो रहा था। स्नान करनेवाले सब चले गये थे।

स्नानशाला के बाहर, अबू कासिम को अपनी चप्पलों के बदले एक नई जोड़ी दिखाई दी। "ऐसी चप्पल बहुत दिनों से में खरीदने की सोच रहा था। यह जान कर अल्लाह ने मुझे चप्पल शायद ईनाम में दी हैं। या कोई गल्ती से मेरी चप्पल पहनकर चला गया है- यह सोचता सोचता वह उन चप्पलों को पहनकर खुशी खुशी घर चला गया।

ये नई चप्पलें काजी की थीं। उस समय वह स्नानशाला में ही था। लेकिन अबू कासिम को उसकी चप्पल इसलिए नहीं दिखाई दी थीं क्योंकि झुञ्झलाकर चप्पल



रखनेवाले ने उनको अलग रख दिया था। अबू कासिम के स्नानशाला से आने से पहले ही उसके लिये घर जाने का समय हो गया था। इसलिये वह चला गया।

काजी ने नहाने के बाद अपनी चप्पल माँगी। स्नानशाला के कर्मचारियों ने सब जगह उन्हें खोजा। पर उन्हें अबू कासिम की चप्पलें ही मिली। वह चप्पल मशहूर थी। इसलिए उन्होंने अबू कासिम को नई चप्पलों के साथ काजी के सामने हाजिर किया। काजी ने अपनी चप्पल ले ली और अबू कासिम को कैद में डलवा दिया। जेल के कर्मचारियों को बहुत-सी

रिश्वत देकर अबू कासिम बड़ी मुश्किल से छूट सका।

अबू कासिम को अपनी चप्पल पर बड़ा गुस्सा आया। उसने उन्हें नील नदी में फेंक दिया।

कुछ दिनों बाद मछियारों ने मछली पकड़ने के लिए नील नदी में जाल फेंका। जब उन्होंने जाल खींचा तो वह उन्हें बहुत भारी लगा। जाल में देखा तो उसमें अबू कासिम की चप्पल निकली। चप्पल की कीलों के कारण जाल कई जगह टूट गया था। चप्पल को अबू कासिम की दुकान पर ले जाकर, उसको खूब गाली देकर उन्होंने उनको दुकान में फेंक दिया। उनके फेंके जाने के कारण, कई दवाइयों की शीशियों, व इत्र की शीशियों नीचे गिर गई। बहुत नुक्सान हुआ।

अबू कासिम के दुख की सीमा न रही, उसने चप्पल को खूब कोसा। उन्हें घर के पिछवाड़े में गाड़ने के लिए एक गढ़ा खोदा। अबू कासिम से एक आदमी चिढ़ा हुआ था, उसने यह देखकर, नगर के अधिकारी के पास जाकर कहा-



"अबू कासिम ने अधिकारियों को बिना बताये अपने घर के पिछवाड़े में गढ़ा खोदकर कोई खजाना निकाला है।"

सब जानते थे कि अबू कासिम बड़ा लोभी था। इसलिये अधिकारियों ने उसे बुलवाया।

"मैंने अपनी पुरानी चप्पलों को गाड़ने के लिये गढ़ा खोदा था।" अबू कासिम ने शपथ लेकर कहा। अधिकारी ने उससे बड़ी घूस लेकर छोड़ दिया। अबू कासिम दुख के मारे दाढ़ी खींचने लगा। वह उन चप्पलों को लेकर शहर से बाहर गया, उन्हें एक नहर में डालकर, यह सोचकर निश्चिन्त घर लौट आया कि वे फिर उसकी नज़र में न आयेंगी। परन्तु उस नहर पर एक चक्की थी। कासिम की चप्पलें उस चक्की में जा फँसी। चक्की रुक गई। जब चक्की की मरम्मत की गई तो चप्पल उसमें मिली।

चक्की के मालिक ने उन्हें पहचान लिया और उसने अबू कासिम के विरुद्ध हरजाने के लिए मुकदमा दायर कर दिया। कासिम को बहुत हरजाना देना पड़ा।



उसकी अक्ल जाती रही। उन चप्पलों से कैसे पीछा छुड़वाया जाय, यह सोचता, वह छत पर जा बैठा। उसने चप्पल मुण्डेर पर रखीं। वह भी मुण्डेर पर बैठकर कुछ सोचने लगा। इतने में बगल के घर के कुत्ते ने अबू कासिम की चप्पल देखी। उसने दोनों घरों के बीच की दीवार को फाँदा और वह उस चप्पल से खिलवाड़ करने लगा। चप्पल मुण्डेर पर से नीचे, गली में गिर गई। बदकिस्मती से उस समय वहाँ एक बुढ़िया जा रही थी। कासिम की भारी चप्पल उसके सिर पर पड़ी। वह विचारी वहीं ठण्डी हो गई।

उस वक्त गली में आने जानेवाले सब बुढ़िया की लाश के चारों ओर जमा हो गये। अबू कासिम को गाली देने लगे। इतने में वहाँ कुछ सिपाही आये। उन्होंने अबू कासिम को पकड़कर जेल में डाल दिया। बुढ़िया के बन्धुओं को उसे हरजाना देना पड़ा। जेल के कर्मचारियों को भी उसे बहुत-सी रिश्वत देनी पड़ी। तब जाकर वह छूट सका।

आखिर उसे अक्ल आई। अगले दिन वह अपनी चप्पल लेकर काजी के पास गया। उसने काजी से कहा-"इन चप्पलों ने मेरा घर तबाह कर दिया, इनके कारण मैं भिखारी हो गया हूँ। मैं आपसे यह निवेदन करने आया हूँ कि आज से ये मेरी चप्पल नहीं हैं। इन चप्पलों के कारण अगर किसी का नुक्सान हुआ तो उसके लिए मैं जिम्मेवार नहीं हूँ। मैं चाहता हूँ कि आप इस बात पर मेहरबानी करके कानूनी तौर पर गौर करें।"

कचहरी में उपस्थित लोग तो हँसे ही। काजी भी हँसते हँसते लोटपोट हो गया।



